सरल जैन-ग्रन्थ-माला, जबलपुर का अष्टम कुसुम

श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचित

रत्नकरण्ड-श्रावकाचार

टीकाकार—

साहित्याचार्य पं० पन्नालालजी 'वसन्त'

सरल जैन-ग्रन्थ-माला, जबलपुर का अष्टम कुसुम

श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचित

रत्नकरण्ड-श्रावकाचार

टीकाकार—

साहित्याचार्य पं० पन्नालालजी 'वसन्त'

साहित्याध्यापक, सत्तर्क सुधा - तरंगिणी-

जैन पाठशाला, सागर, सी० पी०

प्रकाशक—

भुवनेन्द्र 'विश्व'

अध्यक्ष, सरल जैन-ग्रन्थमाला,

जबलपुर, सी० पी०

सुलभ संस्करण पांच आने] सन् १९३९ [विशिष्ट संस्करण सात आने

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

अन्तरप्रदर्शन

——:०——

॥ नमो वर्द्धमानाय ॥

प्रस्तावना

महानुभावो! आज आपके करकमलों में सरल-जैन-ग्रन्थमाला का अष्टम कुसुम सादर समर्पित करते हुये परम प्रसन्नता होती है। मैं नहीं चाहता था कि इतनी जल्दी करता किन्तु अध्यापकों के अत्यधिक आग्रह से प्रकाशित करने के लिये बाध्य हुआ।

इसे आद्योपान्त देखने से आप सहज ही समझलेंगे कि कि नीचे लिखी विशेषतायें आज तक के प्रकाशित किसी जगह के संस्करण में नहीं पाई जातीं, जिनकी बहुत आवश्यकता थी—

१. ग्रन्थ के भावार्थ को समझाने वाला रत्नत्रयवृक्ष, युगपरिवर्तन, लोकाकाश और अलोकाकाश का विभाग, चारों गतियों का स्वरूप ये चार चित्र, २. विषय-सूची प्रत्येक श्लोक के अन्वय के अनुसार ठीक शब्द का अर्थ, ३. कठिन शब्दों का पृथक अर्थ, ४. प्रत्येक श्लोक का सरल भाषा में भावार्थ, ५. अनेकों उपयोगी टिप्पणियां ६. प्रत्येक अध्याय की प्रश्नावली, ७. बारह व्रत और उनके अतीचार ८. अकारादिक्रम से श्लोक सूची ६. चारसौ शब्दों का अर्थ-करण्ड और १० भेद करण्ड ११. परीक्षालयों के तीन वर्ष के प्रश्नपत्र और सब से अधिक उपयोगी, सम्यग्दर्शन, दान, पूजा, सामायिक और सल्लेखना

पर सरल एवं भावपूर्ण निबन्ध। इनके सिवाय ग्रन्थकर्त्ता का संक्षिप्त जीवन-चरित्र भी दिया है। अन्तरप्रदर्शन तो सर्वथा मौलिक और अत्यन्त उपयोगी है।

सम्भव है, इतने पर भी कुछ त्रुटियां रह गई हों। उन्हें क्षमा कर आप मुझे सूचित अवश्य करें ताकि अग्रिम संस्करण में उन्हें सुधार सकूँ।

पुस्तक के टीकाकार, समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान लेखक और कवि, साहित्याचार्य पं० पन्नालालजी 'वसंत' साहित्याध्यापक, स. मु. त. जैन पाठशाला, सागर हैं। आपने अपने अनेक वर्षों के अध्यापन के अनुभव को विद्यार्थियों के सामने रखकर बड़ी त्रुटि को पूरा किया है, एतदर्थ मैं आपको अनेकशः धन्यवाद देता हूँ।

स्थानीय सुयोग्य विद्वान पं० शिखरचन्द्रजी न्याय-काव्यतीर्थ महोदय ने इसके प्रकाशन में बहुत योग दिया है, इसलिये आपका अधिक आभारी हूं। जिन अन्य टीकाओं आदि से हमें कुछ सहायता मिली है उनका भी मैं कृतज्ञ हूं।

पूर्ण विश्वास है कि 'सरल-जैन-ग्रन्थ-माला' के अन्यान्य कुसुमों की भांति इसे भी अधिक आदर और प्रेम से अपना कर आप मुझे अनुगृहीत करेंगे।

विनीत,

भुवनेन्द्र "विश्व"

स्वामीसमन्तभद्र

[जीवन-परिचय]

स्वामी समन्तभद्र जैन समाज के एक प्रतिभाशाली विद्वान थे। आपने अपने बहुमूल्य जीवन में अनेक ग्रन्थ-रत्नों की रचना की और संसार को जैन-धर्म का पवित्र संदेश सुनाया।

स्वामीजी का जीवन और गुरु आदि सम्बन्धी प्रामाणिक परिचय आज तक प्राप्त नहीं हो सका; फिर भी जितना पता चल सका है उसके अनुसार इनका जन्म समय मद्रास इलाके में कांचीवरम के आसपास फणिमण्डल देश के उरगपुर ग्राम में विक्रम सम्वत् १२५ माना जाता है। आपके पिता का नाम काकुस्थ वर्मा था जो क्षत्रिय थे। स्वामीजी का बाल्यकाल का नाम शान्ति वर्मा था।

बालक शान्ति वर्मा की शिक्षा - दीक्षा गुरुगृह में हुई और ये असाधारण बुद्धिमान, अटल धर्म - श्रद्धालु और पवित्र भावना - संपन्न छात्र थे। इनके गृहस्थ जीवन का भी कोई प्रामाणिक पता नहीं मिलता। जैन - धर्म की प्रभावना की प्रबल भावनाओं के कारण आपने समयान्तर में मुनि - दीक्षा ली और घोर तपश्चरण किया।

तीव्र असाताकर्म के उदय से आपको भस्मक रोग हो गया जिसकी बढ़ती हुई वेदना देखकर आपने अपने गुरु से सल्लेखना धारण करने की आज्ञा मांगी; किन्तु उनके गुरु ने इनको प्रतिभासम्पन्न विद्वान समझकर ऐसा करने से मना किया। पश्चात् मिथ्या साधु - वेष धारण कर आप भ्रमण करने लगे और कांची में शिवकोटि राजा के भीमलिंग नामक शिवालय में पहुँचे। वहाँ राजा को आशीर्वाद देकर बोले— आप जितना भी नैवेद्य शिवजी के लिए देंगे उस सबका भोग

उन्हीं को लगा दूँगा। यह सुनकर सबको आश्चर्य हुआ और ऐसा सुनकर राजा ने उस शिवालय में आपको पुजारी बना दिया।

राजा अनेक प्रकार के मिष्टान्न भोग लगाने के लिए भेजते थे; किन्तु स्वामीजी स्वयं सारा भोग खा लेते थे। दो तीन दिन तक यही होता रहा; किन्तु जब इनका रोग दूर हो गया और भेजा हुआ भोग बचने लगा तब लोगों को इन पर शंका होने लगी। लोगों ने राजा से शिकायत की। राजा ने इन्हें कारावास में रखने की इजाजत दी और शिवलिङ्ग को नमस्कार करने की आज्ञा दी। स्वामी समन्तभद्र ने कहा कि इनमें हमारा नमस्कार सहने का सामर्थ्य नहीं है और इतना कहकर आपने स्वयंभू स्तोत्र पढ़ना प्रारंभ किया और ज्योंही 'चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचि गौरं' का पाठ कर रहे थे त्योंही शिवलिंग के स्थान में चन्द्रप्रभ भगवान् की विशाल प्रतिमा के मनोज्ञ दर्शन हुए। यह देखकर राजा बहुत चकित हुआ और स्वयं जैन-धर्म की दीक्षा धारण करली।

आपने बिहार, मालवा, सिन्ध, ठक्क, कांचीपुर, वैदूष और करहाटक आदि में सिंह की भांति भ्रमण करते हुए जैन-धर्म पर वाद-विवाद किया और अनेकों को जैन-धर्म में दीक्षित किया।

आपने रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, आप्तमीमांसा युक्त्यनुशासन, जिनशतकालंकार और स्वयंभूस्तोत्र आदि जैन ग्रन्थों की रचना की। आप संस्कृत, प्राकृत, कानड़ी तथा तामिल आदि भाषाओं के प्रखर विद्वान थे।

स्वामी समन्तभद्र के आदर्श जीवन और प्रखर विद्वत्ता का अनुकरण कर हमें भी उनके समान बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

चित्र-परिचय

१ रत्नत्रयवृक्ष में सम्पूर्ण ग्रन्थ का सारांश दिया गया है। सम्यग्दर्शन को मूल बनाया है उसके आठ अंग हैं, उन्हें स्पष्ट दिखाया है। सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्त करने के लिये सम्यग्दर्शन, आवश्यक होता है। जैसे मूल के अभाव में अंकुर, स्थिति, वृद्धि और फल नहीं होते, वैसे ही सम्यग्दर्शन के अभावमें सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं होते। गृहस्थी, विकलदेश चारित्र पालते हैं, सल्लेखना कर स्वर्ग के सुख और मोक्ष प्राप्त करते हैं तथा मुनि सकलदेश चारित्र पालते हैं, ध्यान के द्वारा स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करते हैं। सिद्धशिला छत्र के समान है उस पर मुक्तजीव रहते हैं।

२ अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल को युग कहते हैं। उनके सुषमा आदि भेद हैं, जिनका तत्वार्थसूत्र आदि में वर्णन है यहाँ उनके बढ़ाने और घटानेका क्रम बताया गयाहै।

३ मनुष्य, देव, नरक और तिर्यंच गतियों का स्वरूप इस चित्र से समझ में आ जाता है।

४ इस चित्र से मालूम होता है कि यह लोकाकाश है और उसके बाहर अनन्त अलोकाकाश है।

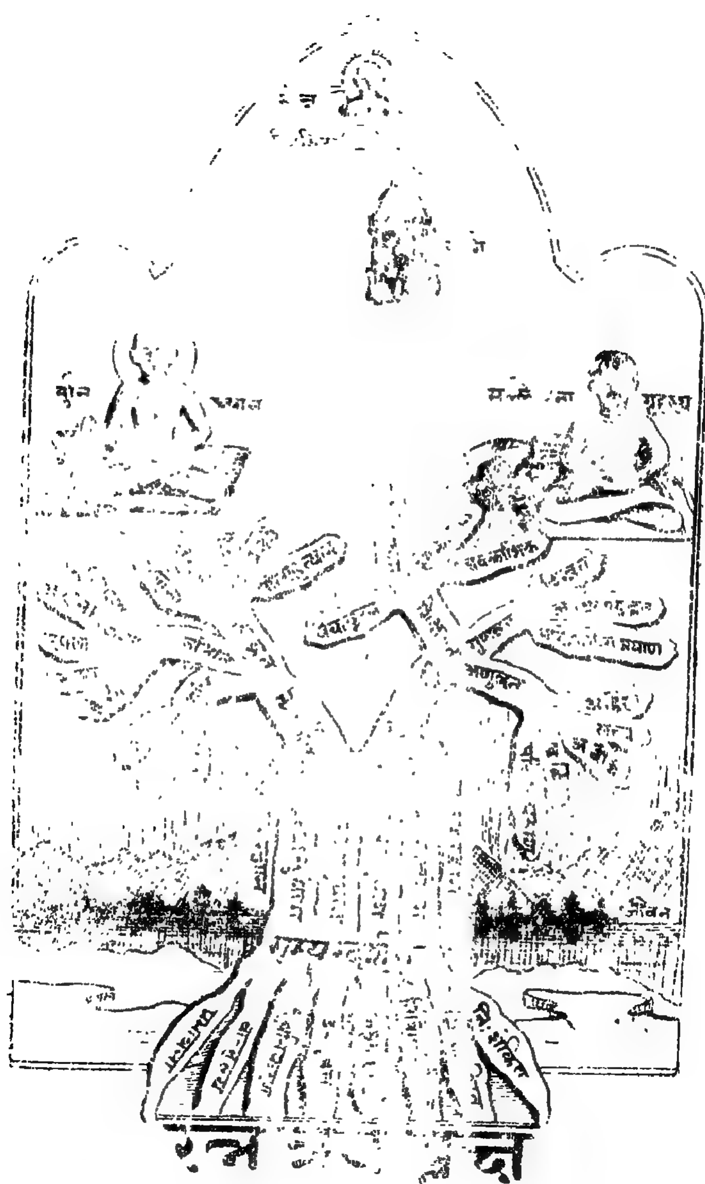
अध्यापकों को चाहिये कि चित्रों के सहारे पाठों को अधिक से अधिक सरलता से समझावें ताकि पाठ को कभी न भूलें।

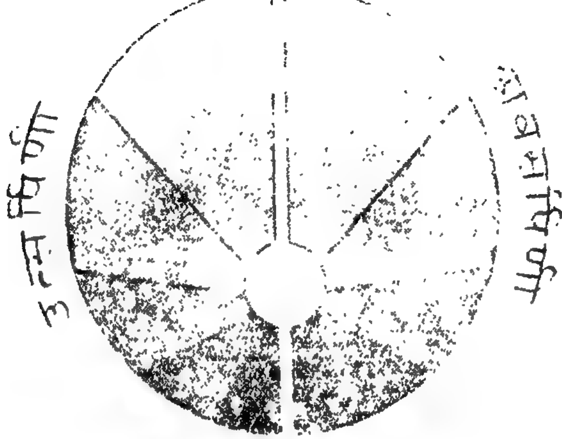
——:o——

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
परिणति-महाव्रतानि	परिणतिमणुव्रतानि	४५	२१
युधशूशृंगि	युधशृंगि	४६	२२
शास्त्र	शस्त्र	४६	२३
देवाधिचरणे	देवाधिदेवचरणे	७४	१६
असत्पृक्ति	असम्पृक्ति	१०१	२
किल्बिवष	किल्विष	१०१	२०
द्रव्य	द्रव्य	१०८	१८
वितथथाहार	वितथव्याहार	१०५	२०
शस्त्र	शास्त्र	११३	५
इन्द्रियों	इन्द्रियां	,,	८
त्रिमूढ़ावोढं	त्रिमूढ़ापोढं	,,	१४
दिवा	दिया	११४	१४
शोषहिबर्भवा	शेषाबहिर्भवा	,,	१४
जल्लेखनामार्य्याः	सल्लेखनामार्य्याः	११६	१६
बाह्म	बाह्य	,,	२२
समाधिकरण	समाधिमरण	१२०	१५
सर्वेदुखैरनालीढः	सर्वैदुखैरनालीढः	,,	२४

———:❀:———




युग परिवर्तन


देव


आकाश

* श्री वीतरागाय नमः *

श्री समन्तभद्रस्वामिविरचित

रत्नकरण्ड-श्रावकाचार

प्रथम परिच्छेद

मंगलाचरण*

अनुष्टुप् छन्द

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

अन्वयार्थ—(यद्विद्या) जिनका ज्ञान, (सालोकानाम्) अलोक सहित (त्रिलोकानाम्) तीनों लोकों के विषय में (दर्पणायते) दर्पण के समान आचरण करता है [तस्मै] उन (निर्धूतकलिलात्मने) पापों को दूर करने वाले (श्री वर्द्धमानाय) श्री महावीर स्वामी के लिये (नमः) नमस्कार [अस्तु] होवे ।

कठिन शब्दार्थ—त्रिलोक—ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक । कलिल = ज्ञानावरणादि कर्म । श्री = अन्तरङ्ग (अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य) और बाह्य (समवशरणादि) लक्ष्मी । वर्द्धमान = अन्तिम तीर्थङ्कर अथवा चौवीसों तीर्थङ्कर क्योंकि " श्रिया वर्द्धते इति श्री वर्द्धमानः " तस्मै, 'लक्ष्मी में जो बढ़ रहे हों' इस अर्थ से सभी तीर्थङ्करों का बोध हो सकता है ।

* जो पाप को नष्ट करे उसे मंगल कहते हैं (मं-पापं गालयति-नाशयतीति

भावार्थ—भगवान महावीर के केवल-ज्ञान में लोक और अलोक के सब पदार्थ दर्पण के समान स्पष्ट झलकते हैं अर्थात् वे सर्वज्ञ हैं और वे ज्ञानावरण आदि आठों कर्म्मों को नाश कर सर्वज्ञ हुये हैं। सच्चे देव, वीतराग और सर्वज्ञ होते हैं। इसलिये उन गुणों वाले भगवान महावीर को यहां नमस्कार किया है।

ग्रन्थकर्त्ता की प्रतिज्ञा और धर्म का लक्षण।

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (सत्त्वान) प्राणियों को (संसार-दुःखतः) संसार के कष्टों से [उद्धृत्य] निकालकर (उत्तमे) उत्तम (सुखे) सुख में (धरति) पहुँचाता है [तन्] उस (कर्मनिवर्हणम्) कर्मों के नाश करने वाले (समीचीनम्) श्रेष्ठ (धर्मम्) धर्म को (देशयामि) कहता हूँ।

कठिन शब्दार्थ—समीचीन=जो इस लोक और परलोक में उपकार करे। कर्म=आत्मा के असली स्वरूप को ढक देने वाले पुद्गल परमाणु—१ ज्ञानावरण २ दर्शनावरण ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय संसार—पांच परिवर्तन अथवा चार गतियां।

भावार्थ—संसार के दुःखों से बचाने वाले आत्मा के परिणाम अथवा आचरण को धर्म कहते हैं। इसी धर्म का इस ग्रन्थ में वर्णन है ॥२॥

मङ्गलम्) १ निर्विघ्नपरिसमाप्ति, २ शिष्टाचार परिपालन ३ कृतज्ञता प्रकाश और ४ नास्तिकता परिहार ये चार ग्रन्थ के आदि में मङ्गलाचरण करने के प्रयोजन हैं।

धर्म का स्वरूप

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥

अन्वयार्थ—(धर्मेश्वराः) धर्म के ईश्वर-जिनेन्द्र भगवान् (सद्दृष्टि-ज्ञानवृत्तानि) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को (धर्मम्) धर्म (विदुः) कहते हैं। (यदीयप्रत्यनीकानि) जिनके उलटे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को अधर्म कहते हैं और ये (भवपद्धतिः) संसार के मार्ग (भवन्ति) होते हैं।

कठिनशब्दार्थ—सम्यग्दर्शन=सच्चे देव, शास्त्र और गुरु का श्रद्धान करना। सम्यग्ज्ञान=जो सम्यग्दर्शन सहित हो और पदार्थ को ज्यों का त्यों जाने। सम्यक्चारित्र=संसार के कारण रूप पांचों पापों का त्याग करना।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र धर्म कहलाते हैं। ये तीनों एक साथ मिलकर मोक्ष के मार्ग हैं। इनसे उलटे मिथ्यादर्शन आदि अधर्म कहलाते हैं और ये संसार के मार्ग हैं ॥३॥

सम्यग्दर्शन का लक्षण

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(परमार्थानाम्) सच्चे (आप्तागमतपोभृताम्) देव, शास्त्र और गुरुओं का (त्रिमूढापोढम्) तीन मूढ़ता रहित, (अष्टाङ्गम्) आठ अङ्ग सहित और (अस्मयम्) मद रहित

(श्रद्धानम्) श्रद्धान करना (सम्यग्दर्शनम्) सम्यग्दर्शन* [अस्ति] है।

शब्दार्थ—श्रद्धान=विश्वास। आप्त=सच्चे देव, जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो। आगम=शास्त्र—जो वीतराग सर्वज्ञ देव के द्वारा कहा गया हो। तपोभृत्=तपस्वी गुरु—जो पांचों पापों का त्याग कर नग्न रह कर वन में आत्म ध्यान करते हैं। मूढ़ता=मूर्खता—बिना विचार काम करना। स्मय—अहङ्कार।

आप्त का लक्षण

आप्तेनोत्सन्नदोषेण‡ सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

अन्वयार्थ—(नियोगेन) नियम से (आप्तेन) सच्चे देव को (उत्सन्नदोषेण) रागादि दोषों से रहित (सर्वज्ञेन) सर्वज्ञ 'और' (आगमेशिना) हितोपदेशी (भवितव्यम्) होना चाहिये। (हि) क्योंकि (अन्यथा) अन्य प्रकार से (आप्तता) सच्चा देवपना (न भवेत्) नहीं हो सकता।

कठिन शब्दार्थ—दोष=जो आत्मा को मलिन करे। आगमेशी=शास्त्रों के स्वामी अर्थात् जो दिव्यध्वनि के द्वारा हित का उपदेश देते हैं। सर्वज्ञ=जो एक साथ सब पदार्थों को जाने।

भावार्थ—जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो वही सच्चा देव कहलाता है ॥५॥

---

* इस ग्रन्थ में व्यवहारनय से सम्यग्दर्शन आदि का लक्षण कहा गया है।

‡ 'आप्तेनोच्छिन्न' पाठान्तर है।

अठारह दोष और वीतराग का लक्षण

क्षुत्पिपासाजरातंक–जन्मान्तकभयस्मयाः ।

न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिसके (क्षुत्पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तकभयस्मयाः) भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व (रागद्वेषमोहाः) राग, द्वेष, मोह (च) और चिन्ता, रति, अरति, खेद, पसीना, निद्रा तथा आश्चर्य ये अठारह दोष* (न 'सन्ति') नहीं हैं (सः) वह (आप्तः) वीतराग देव (प्रकीर्त्यते) कहा जाता है ।

भावार्थ—क्षुधा तृषा आदि १८ दोष केवलज्ञानी अरहन्त भगवान् में नहीं होते इसलिये वे ही वीतराग कहलाते हैं ॥६॥

आप्त के नाम ।

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।

सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

अन्वयार्थ—(परमेष्ठी) परम पद में स्थित (परंज्योतिः) परंज्योति (विराग) वीतराग (विमलः) विमल (कृती) कृतकृत्य (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ (अनादिमध्यान्तः) आदि मध्य और अन्त से रहित (सार्वः) सब का हित करने वाला और (शास्ता) पदार्थों का सच्चा उपदेश देने वाला [आप्तः] सच्चा देव (उपलाल्यते) कहा जाता है ।

---

* चिन्ता आदि सात दोषों का संग्रह श्लोक में आये हुए 'च' शब्द से होता है ।

कठिन शब्दार्थ—परमेष्ठी=जो परम पद में स्थित हो, परंज्योतिः= उत्कृष्ट ज्योति अर्थात् केवलज्ञान के धारी, विराग=राग आदि भावकर्म रहित, विमल=ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म रहित, कृती=हेय उपादेय तत्वों के जानने वाले अथवा कृतकृत्य, अनादिमध्यान्त*—सामान्य स्वरूप की अपेक्षा आदि, मध्य और अन्त से रहित, सार्वः सब का हित करने वाले, शास्ता=सच्चे उपदेशक ।

भावार्थ—परमेष्ठी आदि आप्त के नाम हैं । अथवा परमेष्ठी आदि आप्त के विशेषण हैं इनसे आप्त का स्वरूप जाना जाता है ।

नोटः—पांचवें श्लोक में आप्त को आगमेशी—आगम का स्वामी अर्थात् हितोपदेशी होना लिखा है । इसलिये यह श्लोक हितोपदेशी का लक्षण बतलाने वाला भी हो सकता है । परमेष्ठी आदि हितोपदेशी कहे जाते हैं ॥७॥

प्रश्न—वीतराग और कृतकृत्य मनुष्य हित का उपदेश कैसे दे सकता है ?

उत्तर ।

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम् ।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

अन्वयार्थ—(शास्ता) हितोपदेशी, (सतः) भव्य जीवों को (अनात्मार्थम्) स्वार्थ रहित (रागैः विना) राग के बिना (हितम्) सम्यग्दर्शन आदि हित का (शास्ति) उपदेश देता है जैसे शिल्पिकरस्पर्शात्) बजाने वाले के हाथ के स्पर्श से (ध्वनन्)

---

* आप्त का जो स्वरूप कहा गया है वैसे आप्त अनादि काल से होते आये हैं और अनन्त काल तक होते जावेंगे । जिसका आदि और अन्त नहीं उसका मध्य भी नहीं होता इसलिये आप्त को इन तीनों विशेषणों से रहित कहा है ।

शब्द करता हुआ (मुरजः) मृदङ्ग (किम्) क्या (अपेक्षते) चाहता है ? कुछ नहीं।

कठिन शब्दार्थ—राग=लाभ प्रतिष्ठा आदि की इच्छा।

भावार्थ—जैसे मृदङ्ग, बजाने वाले से कुछ नहीं चाहता और न सुनने वालों से कुछ प्रेम ही रखता है उसी तरह आप्त भी इच्छा और स्वार्थ बिना भव्यों को हित का उपदेश देते हैं।

सच्चे शास्त्र का लक्षण।

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्य-मदृष्टेष्टविरोधकम्।

तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(आप्तोपज्ञम्) सच्चे देव का कहा हुआ (अनुल्लङ्घ्यम्) खण्डन न करने योग्य (अदृष्टेष्टविरोधकम्) प्रत्यक्ष और अनुमान से विरोध रहित (तत्त्वोपदेशकृत्) तत्त्वों का उपदेश करने वाला (सार्वम्) सब का भला करने वाला और (कापथघट्टनम्) कुमार्ग को दूर करने वाला (शास्त्रम्) शास्त्र [भवति] होता है।

कठिन शब्दार्थ—दृष्ट=प्रत्यक्ष, इष्ट=अनुमान तत्त्व=जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष ये सात। कापथ—मिथ्यात्व आदि कुमार्ग।

भावार्थ—जो वीतराग सर्वज्ञदेव के उपदेश के अनुसार रचा गया हो वही सच्चा शास्त्र है ॥९॥

सच्चे गुरु का लक्षण।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।

ज्ञानध्यानतपोरत्नस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

अन्वयार्थ—[यः] जो (विषयाशावशातीतः) विषयों की इच्छा से रहित, (निरारम्भः) आरम्भ रहित (अपरिग्रहः) परिग्रह रहित और (ज्ञानध्यानतपोरत्नः) ज्ञान ध्यान तथा तप रूपी रत्नों को धारण करने वाला हो (सः) वह (तपस्वी) गुरु (प्रशस्यते) प्रशंसा के योग्य है।

कठिन शब्दार्थ—विषय=फूलों की माला और स्त्री आदि पांच इन्द्रियों के विषय। आरम्भ=नौकरी, खेती व्यापार आदि। परिग्रह=धन धान्यादि बाह्य और मिथ्यादर्शन आदि अन्तरङ्ग। ज्ञान=हित और अहित को जानना। ध्यान=चित्त को स्थिर करना। तप=इच्छाओं को रोकना—उपवासादि १२ तप।

भावार्थ—संसार के विषयों से उदासीन, आरम्भ परिग्रह रहित और ज्ञान, ध्यान तथा तप में लीन रहने वाला साधु सच्चा गुरु कहलाता है ॥१०॥

सम्यग्दर्शन के आठ अंग

१. निःशङ्कित अङ्ग का लक्षण।

इदमेवेदृशं चैव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशयारुचिः ॥११॥

अन्वयार्थ—(तत्त्वम्) तत्त्व (इदमेव) यही है (अन्यत् न) दूसरा नहीं है (च) और (ईदृशमेव) ऐसा ही है (च) और (अन्यथा न) दूसरे प्रकार भी नहीं है (इति) इस तरह (सन्मार्गे) मोक्षमार्ग में (आयसाम्भोवत्) तलवार के पानी के समान (अकम्पा) अचल (रुचिः) श्रद्धा (असंशया) शङ्का रहित [भवति] होती है अर्थात् वह निःशङ्कित सम्यग्दर्शन है।

कठिन शब्दार्थ—आयस=लोहे के चार भेद होते हैं—१ कान्तिलोह २ तीक्ष्णलोह ३ मुंडलोह और ४ किट्टलोह। इनमें से तीक्ष्णलोह से बनाई गई तलवार आदि को आयस कहते हैं। इन पर चढ़ाया हुआ पानी अचल होता है।

भावार्थ—तलवार के अचल पानी की तरह जीव आदि तत्त्वों का पक्का श्रद्धान करना निःशङ्कित अङ्ग है ॥११॥

२. निःकांक्षित अङ्ग का लक्षण।

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ॥१२॥

अन्वयार्थ—(कर्मपरवशे) कर्मों के आधीन (सान्ते) नाश सहित (दुःखैः अन्तरितोदये) दुःखों से बाधा दिये जाने वाले और तथा (पापबीजे) पाप के कारण रूप (सुखे) संसार के सुख में (अनास्था) इच्छा रहित (श्रद्धा) श्रद्धान (अनाकाङ्क्षणा) निःकाङ्क्षित अङ्ग (स्मृता) कहा गया है।

कठिन शब्दार्थ—आस्था = नित्य समझना।

भावार्थ—संसार के सुख, दुःखरूप और अनित्य होते हैं इसलिये उनकी इच्छा न रखना निःकांक्षित अंग है।

३. निर्विचिकित्सित अङ्ग का लक्षण.

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ—(स्वभावतः) स्वभाव से (अशुचौ) अपवित्र 'किन्तु' (रत्नत्रयपवित्रिते) रत्नत्रय से पवित्र (काये) शरीर में (निर्जुगुप्सा) ग्लानिरहित (गुणप्रीतिः)=गुणों में प्रेम करना

(निर्विचिकित्सिता) निर्विचिकित्सित अङ्ग (मता) माना गया है।

कठिन शब्दार्थ—रत्नत्रय = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।

भावार्थ—धर्मात्माओं के मलिन शरीर से ग्लानि न कर उनके चारित्र आदि गुणों में प्रेम करना निर्विचिकित्सित अङ्ग है ॥ १३ ॥

४. अमूढदृष्टि अङ्ग का लक्षण.

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असम्पृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढादृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ—(दुःखानाम्) दुःखों के (पथि) मार्गरूप (कापथे) कुमार्ग में (अपि) और (कापथस्थे) कुमार्ग में स्थित मिथ्यादृष्टियों से (असम्मतिः) मन से सहमत न होना, (असम्पृक्तिः) शरीर से शामिल नहीं होना और (अनुत्कीर्तिः) वचन से प्रशंसा नहीं करना (अमूढादृष्टिः) अमूढदृष्टि अङ्ग (उच्यते) कहा जाता है।

कठिन शब्दार्थ—असम्मति = मिथ्यादृष्टियों के कामों को अच्छा न समझना। असम्पृक्ति = चुटकी बजाकर, अंगुली चलाकर अथवा सिर हिलाकर मिथ्यादृष्टियों की प्रशंसा न करना। अनुत्कीर्तिः = मिथ्यादृष्टियों की वचन से प्रशंसा नहीं करना।

भावार्थ—कुमार्ग और कुमार्ग में रहने वालों की मन वचन तथा काय से प्रशंसा नहीं करना अमूढदृष्टि अङ्ग है ॥१४॥

५. उपगूहन अङ्ग का लक्षण

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस कारण से (स्वयम्) अपने आप (शुद्धस्य मार्गस्य) शुद्ध मार्ग की (बालाशक्तजनाश्रयाम्) अज्ञानी तथा असमर्थ मनुष्यों से हुई (वाच्यताम्) निन्दा को (प्रमार्जन्ति) दूर करते हैं (तत्) उस कारण को (उपगूहनम्) उपगूहन† अङ्ग (वदन्ति) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—मार्ग = मोक्ष का रास्ता—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। बाल = अज्ञानी। अशक्त = जो व्रत आदि पालन न कर सके।

भावार्थ—रत्नत्रय धारण करने वाले पुरुषों के दोषों को ढांकना और दूर करना उपगूहन अङ्ग है ॥ १५ ॥

६. स्थितीकरण अङ्ग का लक्षण

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितीकरणमुच्यते ॥१६॥

अन्वयार्थ—(दर्शनात्) सम्यग्दर्शन से, (अपि) और (चरणात्) सम्यक्चारित्र से (वा) तथा सम्यग्ज्ञान से (चलताम्) डगमगाते हुए पुरुषों का (धर्मवत्सलैः) धर्म प्रेमियों द्वारा (प्रत्यवस्थापनम्) फिर से उसी में स्थिर कर देना (प्राज्ञैः) पंडितों द्वारा (स्थितीकरणम्) स्थितीकरण नामका अङ्ग (उच्यते) कहा जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आदि रूप मोक्षमार्ग से डिगते हुए पुरुषों को उपदेश आदि के द्वारा फिर से उसी में स्थिर कर देना स्थितीकरण अङ्ग है ॥१६॥

---

† इस अङ्ग का दूसरा नाम 'उपबृंहण' भी है जिसका अर्थ आत्मा के गुणों की वृद्धि करना होता है।

७. वात्सल्य अङ्ग का लक्षण

स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥

अन्वयार्थ—(स्वयूथ्यान् प्रति) अपने सहधर्मी मनुष्यों के साथ (सद्भावसनाथा) अच्छे भावों से और (अपेतकैतवा) कपट रहित (यथायोग्यम्) योग्यता के अनुसार (प्रतिपत्तिः) आदर सत्कार करना (वात्सल्यम्) वात्सल्य अङ्ग (अभिलप्यते) कहा जाता है ।

कठिन शब्दार्थ—वात्सल्य सहधर्मियों के साथ गौवत्स के समान प्रेम करना । प्रतिपत्ति=पूजा प्रशंसा आदि करना । यथायोग्य=योग्यतानुसार—हाथ जोड़ना, सामने जाना, प्रशंसा करना और धर्मसाधन के उपकरण देना आदि । सद्भाव=अच्छे भाव मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य ।

भावार्थ—मैत्री प्रमोद आदि भावों से, माया रहित होकर धर्मात्माओं का उचित सत्कार करना वात्सल्य अङ्ग है ॥१७॥

८. प्रभावना अङ्ग का लक्षण

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

अन्वयार्थ — (अज्ञानतिमिरव्याप्तिम्) अज्ञान रूपी अन्धकार के विस्तार को (यथायथम्) शक्ति के अनुसार (अपाकृत्य) दूर कर (जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः) जिनेन्द्र-भगवान् के धर्म का प्रकाश करना (प्रभावना) प्रभावना अङ्ग (स्यात्) है ।

कठिन शब्दार्थ—व्याप्ति=प्रसार—फैलाव । माहात्म्य—प्रभाव । यथायथम्=जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक, दान आदि ।

भावार्थ—अज्ञान को दूर कर जैनधर्म की महिमा प्रकट करना प्रभावना अङ्ग है ।

आठ अङ्गों में प्रसिद्ध होने वाले पुरुषों के नाम

तावदञ्जनचौरोऽङ्के ततोऽनन्तमती स्मृता ।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥ १६ ॥
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततःपरः ।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥ २० ॥

अन्वयार्थ—(तावत् अङ्के) पहले निःशङ्कित अङ्ग में (अञ्जनचौरः) अञ्जन चौर (ततः अनन्तमती) दूसरे निःकाङ्क्षित अङ्ग में अनन्तमती (स्मृता) स्मरण की गई है, (तृतीये) तीसरे निर्विचिकित्सित अङ्ग में (उद्दायनः) उद्दायन राजा (अपि) और (तुरीये) चौथे अमूढदृष्टि अङ्ग में (रेवती) रेवती रानी (मता) प्रसिद्ध मानी गई है ॥ १६ ॥

(ततः) इसके बाद पांचवें उपगूहन अङ्ग में (जिनेन्द्रभक्तः) जिनेंद्रभक्त सेठ (ततः परः अन्यः) फिर छटवें स्थितीकरण अङ्ग में (वारिषेणः) वारिषेण राजकुमार (च) और (शेषयोः) सातवें वात्सल्य अंग तथा आठवें प्रभावना अङ्ग में (विष्णुः) विष्णुकुमार मुनि (च) और (वज्रनामा) वज्रकुमार मुनि (लक्ष्यतांगतौ) प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥२०॥

आठ अङ्ग धारण करने की आवश्यकता ।

नांगहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(अङ्गहीनम्) निःशंकित आदि अङ्गों से रहित (दर्शनम्) सम्यग्दर्शन (जन्मसन्ततिम्) संसार की परम्परा को

(कुसृम) नष्ट करने के लिये (अलम् न अस्ति) समर्थ नहीं है (हि) क्योंकि (अक्षरन्यूनः) कम अक्षरों वाला (मन्त्रः) मन्त्र (विषवेदनाम्) विष के दुःख को (न निहन्ति) नहीं नष्ट करता है।

भावार्थ—जैसे पूर्ण अक्षरों वाला मन्त्र ही साँप आदि के विष को दूर कर सकता है वैसेही निःशंकित आदि अङ्गों सहित सम्यग्दर्शन ही संसार का नाश कर सकता है ॥२१॥

तीन मूढ़ताओं का वर्णन।

लोकमूढ़ता का लक्षण।

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

अन्वयार्थ—(आपगासागरस्नानम्) धर्म समझकर गङ्गा आदि नदियों तथा समुद्र में नहाना, (सिकताश्मनाम्) वालु और पत्थरों का (उच्चयः) ढेर करना, (गिरिपातः) पहाड़ से गिरना (च) और (अग्निपातः) अग्नि में जलना आदि काम करना (लोकमूढम्) लोकमूढ़ता (निगद्यते) कही जाती है।

भावार्थ—समुद्र में नहाने आदि लोक के कामों को, धर्म समझ कर करना लोकमूढ़ता है।

देवमूढ़ता का लक्षण।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥२३॥

अन्वयार्थ—(आशावान्) धन आदि चाहने वाला मनुष्य (वरोपलिप्सया) वर पाने की इच्छा से (यत्) जो (रागद्वेष-मलीमसाः) राग द्वेष से मलिन (देवताः) देवताओं को

(उपासीत) पूजता है [तत्] वह पूजन (देवतामूढम्) देव मूढ़ता (उच्यते) कहलाती है।

कठिन शब्दार्थ—आशावान्—जिसे पुत्र मित्र धन आदि पाने की इच्छा हो। देवता—यक्ष, पद्मावती क्षेत्रपाल आदि।

भावार्थ—पुत्र और धन आदि फल पाने की इच्छा से रागी द्वेषी देवों को पूजना देवमूढ़ता है ॥२३॥

पाषण्डिमूढता (गुरुमूढता) का लक्षण।

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्।

पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(सग्रन्थारम्भहिंसानाम्) परिग्रह आरम्भ और हिंसा सहित (संसारावर्तवर्तिनाम्) संसार रूप भँवर में रहने वाले (पाषण्डिनाम्) पाखण्डी साधुओं का (पुरस्कारः) आदर सत्कार करना (पाषण्डिमोहनम्) पाखण्डिमूढता या गुरुमूढता (ज्ञेयम्) जानना चाहिये।

कठिन शब्दार्थ—ग्रन्थ (परिग्रह)=दासी दास आदि। आरम्भ=खेती वगैरह। आवर्त=भँवर। पुरस्कार=पूजा भक्ति आदर भेंट आदि।

भावार्थ—पाखण्डी गुरुओं की पूजा व भेंट आदि चढ़ाना पाखण्डिमूढ़ता है। इसी का दूसरा नाम "गुरु मूढता" है ॥२४॥

आठ मदों के नाम।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।

अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥

अन्वयार्थ—(गतस्मयाः) अहङ्कार रहित आचार्य, (ज्ञानम्) ज्ञान (पूजाम्) पूजा (कुलम्) कुल (जातिम्) जाति

(बलम्) बल (ऋद्धिम्) धन-सम्पत्ति (तपः) तप और (वपुः) शरीर इन (अष्टौ) आठ को (आश्रित्य) आश्रय करके (मानित्वम्) मान करने को (स्मयम्) मद (आहुः) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—ज्ञान=शास्त्र ज्ञान, शिल्पज्ञान आदि। पूजा=प्रतिष्ठा। कुल=पिता का वंश। जाति=माता का वंश। बल=शरीर की ताक़त। ऋद्धि=धन और राज्य आदि अथवा तपस्या के प्रभाव से प्राप्त हुई विक्रिया आदि ऋद्धियाँ। तप=उपवासादि बारह तप। वपुः—शरीर की सुन्दरता।

भावार्थ—ज्ञान आदि में दूसरे को अपने से नीचा समझना सो मद है, उसके आठ भेद हैं—१ ज्ञान मद २ पूजा मद ३ कुल मद ४ जाति मद ५ बल मद ६ ऋद्धि मद ७ तप मद और ८ शरीर मद ॥२५॥

मद करने से हानि।

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (गर्विताशयः) घमण्डी मनुष्य (स्मयेन) घमण्ड से (अन्यान्) दूसरे (धर्मस्थान्) धर्मात्माओं को (अत्येति) नीचा दिखाता है (सः) वह 'मानों' (आत्मीयम्) अपने (धर्मम्) धर्म का (अत्येति) अनादर करता है। 'क्योंकि' (धर्मः) धर्म (धार्मिकैः विना) धर्मात्माओं के बिना (न 'भवति') नहीं होता है।

कठिन शब्दार्थ—धर्म=सम्यग्दर्शन आदि रूप। धार्मिक=सम्यग्दर्शन आदि धारण करने वाले व्रती पुरुष।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आदि धर्म को धर्मात्मा ही धारण करते हैं इसलिये धर्मात्माओं का अनादर नहीं करना चाहिये। धर्मात्माओं का अनादर करने से धर्म की ही निन्दा होती है।

मद दूर करने का उपदेश ।

यदि पापनिरोधोऽन्य-सम्पदा किं प्रयोजनम् ।

अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य-सम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥

अन्वयार्थ-(यदि) यदि (पापनिरोधः) पापों का आना बन्द [अस्ति] है [तर्हि] तो (अन्यसम्पदा) धन कुल आदि की सम्पदा से (किं प्रयोजनम्) क्या प्रयोजन है? (अथ) यदि (पापास्रवः) पापों का आस्रव (अस्ति) है [तर्हि] तो (अन्यसम्पदा) अन्य सम्पत्ति से (किम् प्रयोजनम्) क्या प्रयोजन है?

कठिन शब्दार्थ—पाप=ज्ञानावरण आदि आठ कर्म अथवा हिंसा आदि पांच पाप। आस्रव=मन, वचन और काय के हलन चलन से कर्मों का आना।

भावार्थ—यदि पापों का नाश हो गया तो पुण्य का बन्ध होने से उत्तम कुल आदि सब सम्पत्तियां स्वयं मिल जाती हैं और यदि पाप आते रहते हैं तो उत्तम कुल आदि मिलने पर भी उनसे कोई लाभ नहीं हो सकता। इसलिये कुल आदि आठों मद नहीं करने चाहिये।

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम् ।

देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(देवाः) अरहन्त भगवान (सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्) सम्यग्दर्शन से सहित (मातङ्गदेहजम् अपि) चाण्डाल को भी (भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्) भस्म से ढके हुए अंगार की तरह भीतर है प्रकाश जिसके ऐसा (देवम्) देव (विदुः) मानते हैं।

कठिन शब्दार्थ—देव-अरहन्त परमेष्ठी या गणधरादिक आचार्य। देवम्=सत्कार करने योग्य।

भावार्थ—चांडाल को भी सम्यग्दर्शन के कारण पूज्य बतलाया है।

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का फल

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥२९॥

अन्वयार्थ—(धर्मकिल्विषात्) धर्म और पाप से (श्वा अपि) कुत्ता भी (देवः) देव और (देवः अपि) देव भी (श्वा) कुत्ता (जायते) हो जाता है। (धर्मात्) धर्म को छोड़कर (शरीरिणाम्) प्राणियों के (का अपि नाम अन्या) कोई (सम्पत्) सम्पत्ति (भवेत्) हो सकती है? कभी नहीं।

कठिन शब्दार्थ—किल्विषं (पाप) = मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्या-चारित्र।

भावार्थ—धर्म से संसार की ऊंची से ऊंची सम्पत्ति मिल जाती है और अधर्म से मिली हुई सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती है। इसलिये धर्म को सदा धारण करना चाहिये।

सम्यग्दर्शन को निर्दोष रखने का उपदेश

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥

अन्वयार्थ—(शुद्धदृष्टयः) निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव (भयाशास्नेहलोभात्) भय, आशा, स्नेह तथा लोभ से (कुदेवागमलिंगिनाम् च) कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुओं और इनके उपासकों को (प्रणामम्) प्रणाम (च) तथा (विनयम् एव) विनय भी (न कुर्युः) न करें।

कठिन शब्दार्थ—भय=राजा वगैरह का डर। इसके सात भेद हैं। १ इह लोक भय २ परलोकभय ३ वेदना भय ४ मरणभय ५ अगुप्तिभय ६ अकस्मात्भय और ७ अरक्षक भय। आशा=आगामी धन आदि की इच्छा। स्नेह=मित्र वगैरह से प्रेम। लोभ=वर्तमान काल में धन प्राप्ति की लालसा। प्रणाम=सिर झुका कर नमस्कार करना। विनय=हाथ जोड़ना आदि।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि जीव डर से, आशा से, स्नेह से और लोभ से कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र और इनके उपासक, इन ६ अनायतनों को प्रणाम तथा विनय नहीं करे। ऐसा करने से ही सम्यग्दर्शन निर्दोष * रह सकता है।

ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ—(दर्शनम्) सम्यग्दर्शन, (ज्ञानचारित्रात्) ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा (साधिमानम्) श्रेष्ठता को (उपाश्नुते) प्राप्त होता है (तत्) इसलिये [सन्तः] सज्जन पुरुष (दर्शनम्) सम्यग्दर्शन को (मोक्षमार्ग) मोक्षमार्ग में (कर्णधारम्) प्रधान या खेवटिया (प्रचक्षते) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—मोक्षमार्ग = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ही ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसलिये मोक्षमार्ग में यही मुख्य कहा जाता है। जिसतरह जहाज को, समुद्र के उस पार ले जाने के लिये खेवटिया की आवश्यकता होती है उसी तरह आत्मा को संसार-समुद्र से सपार (मोक्ष) लेजाने के लिये सम्यग्दर्शन की आवश्यकता है।३१।

* आठ अंगों के उलटे ८ दोष, ८ मद, ३ मूढ़ता और ६ अनायतन ये सम्यग्दर्शन के २५ दोष हैं। इनको दूरकरने से सम्यग्दर्शन निर्दोष हो जाता है।

विद्यावृत्तस्य संभूति-स्थिति-वृद्धि-फलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्त्वे) सम्यग्दर्शन के (असति) न होने पर, (बीजाभावे) बीज के अभाव में (तरोः इव) वृक्ष की तरह (विद्यावृत्तस्य) ज्ञान और चारित्र को (संभूति-स्थिति-वृद्धि-फलोदयाः) उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फलों का लगना (न सन्ति) नहीं होता है।

भावार्थ—जैसे बीज के न होने पर पेड़ पैदा आदि नहीं हो सकता वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी नहीं हो सकते।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थ—(निर्मोहः) मोह रहित (गृहस्थः) गृहस्थ (मोक्षमार्गस्थः) मोक्षमार्ग में स्थित है किन्तु (मोहवान्) मोह सहित (अनगारः एव) मुनिभी (न) मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है 'इसलिये' (मोहिनः) मोही (मुनेः) मुनि से (निर्मोहः) मोह रहित (गृही) गृहस्थ (श्रेयान्) श्रेष्ठ है॥

कठिन शब्दार्थ—गृहस्थ = जो सम्यग्दर्शन के साथ पांच अणुव्रतों का पालन करता हुआ घर में रहता है। मोह = मिथ्यादर्शन। मुनि = जो पांच पापों का बिलकुल त्याग कर नग्न हो वन में रहते हैं।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टि मुनि की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि गृहस्थ अच्छा है। क्योंकि सम्यग्दर्शन से ही कल्याण हो सकता है, शेष से नहीं। ॥ ३३ ॥

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व-समं नान्यत्तनूभृताम् ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(त्रैकाल्ये) तीन काल और (त्रिजगति) तीन जगत् में (तनूभृताम्) जीवों के (सम्यक्त्वसमम्) सम्यग्दर्शन के समान (किञ्चित् अपि) कुछ भी (श्रेयः) कल्याण (न 'अस्ति') नहीं है (च) और (मिथ्यात्वसमम्) मिथ्यात्व के समान (अश्रेयः न) अकल्याण नहीं है।

कठिन शब्दार्थ—तीनकाल—१ भूत २ भविष्यत् ३ वर्तमान। तीनलोक—१ ऊर्ध्वलोक २ मध्यलोक ३ अधोलोक। सम्यक्त्व—सम्यग्दर्शन।

भावार्थ—सब काल और सब क्षेत्रों में जीवों को, सम्यग्दर्शन के समान कोई दूसरा भला करने वाला नहीं है और मिथ्यादर्शन की तरह बुरा करने वाला नहीं है ॥ ३४ ॥

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

आर्यागीतिच्छन्दः

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥३५॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शनशुद्धाः) निर्दोष सम्यग्दृष्टि जीव (अव्रतिकाः अपि) व्रतरहित होने पर भी (नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि) नारकी, तिर्यंच, नपुंसक और स्त्रीपने को (दुष्कुलविकृताल्पायुः) नीच कुल, विकल अङ्ग, अल्पआयु (च) तथा (दरिद्रताम्) दरिद्रपने को (न व्रजन्ति) प्राप्त नहीं होते हैं।

कठिन शब्दार्थ—नारक = नरकगति नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुई अवस्था। तिर्यंच—तिर्यंच गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुई अवस्था। तिर्यंच = एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पांच इन्द्रियों में पृथिवी, जल, जिनकी

भौंरा और गधा घोड़ा भैंस वगैरह होना। नपुंसक = नपुंसक वेद के उदय से प्राप्त हुई अवस्था, जिसमें स्त्री पुरुष दोनों से रमने के भाव होते हैं। स्त्री = स्त्री वेद के उदय से प्राप्त हुई अवस्था, जिसमें पुरुष से रमने के भाव होते हैं। दुष्कुल = नीचकुल, जिसमें चारित्र धारण नहीं किया जा सकता। व्रत = पांच पापों का त्याग करना। इसके दो भेद हैं, १ अणुव्रत २ महाव्रत।

भावार्थ—*सम्यग्दृष्टि पुरुष व्रतरहित होने पर भी मरकर नरकगति, तिर्यञ्चगति और स्त्रियों में पैदा नहीं होता। मनुष्यगति में भी नीचकुल, विकलाङ्ग अल्पआयु और दरिद्रता को प्राप्त नहीं होता। यदि व्रत सहित हो तब स्वर्ग के देवों में ही पैदा होता है ॥ ३५ ॥

ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः ।
माहाकुला महार्था, मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ।३६।

अन्वयार्थ—(दर्शनपूताः) सम्यग्दर्शन से पवित्र हुए पुरुष (ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः) उत्साह, प्रताप, विद्या, वीर्य, कीर्ति, कुलवृद्धि, विजय और ऐश्वर्य से सहित (माहाकुलाः) उच्चकुल में उत्पन्न (महार्थाः) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधक (मानवतिलकाः) मनुष्यों में श्रेष्ठ (भवन्ति) होते हैं।

कठिन शब्दार्थ—अर्थ = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि पुरुष कान्ति, प्रताप, विद्या, पराक्रम और कीर्ति आदि, सहित होकर उच्च कुल में पैदा होते हैं ॥३६॥

---

* यदि किसी जीव ने सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले ही नरक आयु का बन्ध कर लिया हो तो वह मरकर पहिले नरक में पैदा हो सकता है, नीचे नहीं। इसी तरह जिस मनुष्य ने सम्यग्दर्शन के पहले तिर्यंच आयु बांध ली हो वह भी मरकर भोगभूमिका ही तिर्यंच होगा, कर्मभूमिका नहीं।

अष्टगुणपुष्टितुष्टा, दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि, चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥३७॥

अन्वयार्थः—(जिनेन्द्रभक्ताः) जिनेन्द्रभगवान् के भक्त (दृष्टिविशिष्टाः) सम्यग्दृष्टि जीव (स्वर्गे) स्वर्ग में अष्टगुणपुष्टितुष्टाः) अणिमा आदि आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट (प्रकृष्टशोभाजुष्टाः) श्रेष्ठ शोभा से सहित [भवन्तः] होते हुए (अमराप्सरसाम्) देवों और देवांगनाओं की (परिषदि) सभा में (चिरम्) बहुत काल पर्यन्त (रमन्ते) रमण करते हैं।

कठिन शब्दार्थ—अष्टगुण = अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। जिन = जिन्होंने कर्म रूपी शत्रुओं को जीत लिया है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि पुरुष ही स्वर्ग के इन्द्र आदि ऊँचे पदों के सुख पा सकते हैं ॥३७॥

नवनिधिसप्तद्वय—रत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम्।
वर्तयितुं प्रभवन्ति, स्पष्टदृशःक्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

अन्वयार्थ—(स्पष्टदृशः) निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव (क्षत्रमौलिशेखरचरणाः) राजाओं के मुकुट के अग्र भाग पर हैं चरण जिनके ऐसे तथा (नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः) नव निधि और चौदह रत्नों के स्वामी (सर्वभूपिपतयः) समस्त-पृथवी के मालिक [सन्तः] होते हुए (चक्रम्) चक्ररत्न को (वर्तयितुम्) प्रवर्ताने के लिये (प्रभवन्ति) समर्थ होते हैं।

कठिन शब्दार्थ—निधि = जिनसे मन चाही वस्तुएं प्राप्त होती हैं। वे नव होती हैं—१ काल २ महाकाल ३ पाण्डुक ४ मानवाख्य ५ नैसर्पाख्य ६ सर्वरत्नाख्य ७ शंख ८ पद्म और ९ पिङ्गलाख्य। रत्न = जो अपनी २

जाति में सब से अच्छा हो। वे चौदह होते हैं—१ सुदर्शन चक्र २ सुनन्द खड्ग ३ दण्ड ४ चमर ५ छत्र ६ चूड़ामणि ७ सेनापति ८ चिन्तामणि काकिणी ९ अमित जव अश्व १० विजयार्ध गज ११ स्थपति १२ विद्यासागर पुरोहित १३ काम वृद्धि गृहपति और १४ सुभद्रा स्त्री॥ ऊपर लिखी हुई ९ निधियां और १४ रत्न* चक्रवर्ती के होते हैं। चक्रवर्ती सम्पूर्ण भरत क्षेत्र का स्वामी होता है और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उन्हें नमस्कार करते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन के प्रभाव से जीव मरकर चक्रवर्ती होते हैं॥३८॥

अमरासुरनरपतिभि, र्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था, वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः॥३९॥

अन्वयार्थ—(दृष्ट्या) सम्यग्दर्शन के द्वारा (सुनिश्चितार्थाः) जीव आदि पदार्थों का सम्यक्श्रद्धान करने वाले, सम्यग्दृष्टी पुरुष (अमरासुरनरपतिभिः) इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र (च) और (यमधरपतिभिः) गणधरों के द्वारा (नूतपादाम्भोजाः) वन्दित हैं चरण कमल जिनके ऐसे 'तथा' (लोकशरण्याः) तीन लोक के जीवों को शरणभूत (वृषचक्रधराः) धर्म-चक्र के धारक-तीर्थङ्कर (भवन्ति) होते हैं।

कठिन शब्दार्थ—अर्थ=जीव आदि सात तत्त्व अथवा पुण्य पाप सहित ९ पदार्थ। यमधरपति=चारित्र को धारण करने वाले—मुनियों के स्वामी गणधर। वृषचक्र=धर्मचक्र—अरहन्त भगवान के देवकृत चौदह अतिशयों में से एक अतिशय। जब भगवान् विहार करते हैं तब वह धर्मचक्र उनके आगे आगे चलता है।

भावार्थ—जीव सम्यग्दर्शन के प्रभाव से तीर्थङ्कर होते हैं। इसलिये इन्द्र और धरणेन्द्र आदि उन्हें नमस्कार करते हैं।

---

* 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमिहोच्यते'।

शिवमजरमरुजमक्षय-मव्याबाधं विशोकभयशंकम् ।
काष्ठागतसुखविद्या-विभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥

अन्वयार्थ—(दर्शनशरणाः) सम्यग्दर्शन ही है शरण जिनके ऐसे जीव (अजरम्) बुढ़ापा रहित (अरुजम्) रोग रहित (अक्षयम्) नाश रहित (अव्याबाधम्) बाधा रहित (विशोकभयशङ्कम्) शोक भय शङ्का रहित (काष्ठागतसुखविद्या-विभवम्) परम सीमा को प्राप्त हुआ है सुख और ज्ञान का विभव जिसमें ऐसे 'तथा' (विमलम्) कर्ममल रहित (शिवम्) मोक्ष को (भजन्ति) प्राप्त होते हैं।

कठिन शब्दार्थ—शिव (मोक्ष)=आत्मा से समस्त कर्मों का हमेशा के लिये अलग हो जाना।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि पुरुष मोक्ष को प्राप्त होते हैं। वहाँ उन्हें बाधा रहित अनन्तसुख प्राप्त होता है। वे वहां से फिर कभी लौट कर संसार में नहीं आते ॥४०॥

फल संग्रह श्लोक (उपसंहार)

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानं
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम् ।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जिनभक्तिः) जिनेन्द्र [illegible] में भक्ति रखने वाला (भव्यः) भव्यजीव (अमेयमानम्) अपरिमित (देवेन्द्रचक्रमहिमानम्) देवेन्द्र समूह की महिमा को (अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्) राजाओं के मस्तकों से पूजनीय (राजेन्द्रचक्रम्) चक्रवर्ती के सुदर्शन चक्र को (च) और (अधरीकृत-

सर्वलोकम्) तिरस्कृत किया है सर्व लोक को जिसने ऐसे (धर्मचक्रम्) तीर्थङ्कर के धर्मचक्र को (लब्ध्वा) प्राप्त कर (शिवम्) मोक्ष को (उपैति) प्राप्त होता है।

कठिन शब्दार्थ—भव्य=जिस जीव के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्रकट हो सके। इसके तीन भेद हैं—१ निकट भव्य २ दूर भव्य ३ दूरातिदूर भव्य।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि पुरुष, इन्द्र, चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥४१॥

इति स्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचिते रत्नकरण्ड-श्रावकाचारे प्रथमपरिच्छेदः।

प्रश्नावली।

(१) सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?
(२) संसार का कारण क्या है ?
(३) तीसरे, पांचवें और सातवें अङ्ग का क्या लक्षण है ?
(४) सम्यग्दृष्टि जीव राजा को नमस्कार करेगा या नहीं ?
(५) वीतराग देव हित का उपदेश कैसे देते हैं ?
(६) सम्यग्दृष्टि जीव मर कर क्या क्या नहीं होता ?
(७) सम्यग्दर्शन की महिमा के कोई दो श्लोक अन्वय अर्थ सहित लिखो।
(८) अपने बच्चे के प्रति मा का प्यार, वात्सल्य अङ्ग कहलावेगा या नहीं ?
(९) अभिमान करने से क्या हानि है ?
(१०) मूढ़ता किसे कहते हैं ?

दूसरा परिच्छेद

❀ सम्यग्ज्ञान का वर्णन ❀

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

आर्याच्छन्द

अन्यूनमनतिरिक्तं, याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो [वस्तुस्वरूपम्] जीवादि पदार्थों के स्वरूप को (अन्यूनम्) न्यूनता रहित (अनतिरिक्तम्) अधिकतारहित (च) और (विपरीतात् विना) विपरीतता रहित (याथातथ्यम्) जैसा का तैसा (निःसन्देहम्) सन्देह रहित (वेद) जानता है (तत्) उसे (आगमिनः) शास्त्रों के ज्ञाता पुरुष (ज्ञानम्) सम्यग्ज्ञान (आहुः) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—विपरीत=पदार्थ के असली स्वरूप को न जानकर उल्टे स्वरूप को जानना। जैसे रस्सी को सांप जानना। सन्देह='यह पदार्थ ऐसा है अथवा वैसा' इस तरह का अनिश्चित ज्ञान; जैसे यह रस्सी है या सांप।

भावार्थ—जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप जानना सम्यग्ज्ञान है। पदार्थ को हीनाधिक, सन्देह सहित और विपरीत जानना मिथ्याज्ञान है ॥४२॥

१. प्रथमानुयोग का लक्षण.

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—(समीचीनः) सम्यक् (बोधः) ज्ञान (अर्थाख्यानम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कथन करने वाले (चरितम्) चरित्र (अपि) और (पुराणम्) पुराण को (पुण्यम्)

पुण्यबन्ध में कारण तथा (बोधिसमाधिनिधानम्) रत्नत्रय और ध्यान के खजाने रूप (प्रथमानुयोगम्) प्रथमानुयोग को (बोधति) जानता है ।

कठिन शब्दार्थ—चरित = जिसमें एक पुरुष की कथा का वर्णन हो जैसे चारुदत्त चरित्र आदि । आदिपुराण = जिसमें श्रेष्ठ शलाका पुरुषों की कथा हो जैसे आदिपुराण—उत्तरपुराण आदि । बोधि—रत्नत्रय । अनुयोग = शास्त्र । समाधि ध्यान अथवा प्राप्त हुए सम्यग्दर्शन आदि की पूर्णता करना (समाधिमरण) ।

भावार्थ—जिसमें महापुरुषों के जीवन चरित्र लिखे हों उसे प्रथमानुयोग कहते हैं, जैसे आदिपुराण, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, श्रीपाल चरित्र, पुण्यास्रव कथाकोश वगैरह ।

२. करणानुयोग का लक्षण.

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनाञ्च ।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थ—(तथामतिः) समीचीन ज्ञान (लोकालोकविभक्तेः) लोक और अलोक के विभाग, (युगपरिवृत्तेः) युगों के परिवर्त्तन, (चतुर्गतीनाम्) चारों गतियों (च) तथा (च) गुणस्थान आदि का स्वरूप बतलाने के लिये (आदर्शम् इव) दर्पण के समान स्थित (करणानुयोगम्) करणानुयोग को (अवैति) जानता है ।

कठिन शब्दार्थ—लोक = जहां जीव आदि छहों द्रव्य पाये जाते हैं । इसका आकार पुरुष के शरीर के समान है और ऊंचाई १४ राजु है । अलोक = लोक के चारों ओर का अनन्त आकाश । वहां आकाश के सिवाय और कुछ नहीं रहता । युग=उत्सर्पिणी (जिसमें विद्या बल आदि की बढ़ती होती है) और अवसर्पिणी (जिसमें विद्या वगैरह की घटती होती है) ।

च = समुच्चय (नहीं कही गई बातों का संग्रह करने वाला) गुण-स्थान=मोह और योग के निमित्त से होने वाले आत्मा के भाव।

भावार्थ—जिसमें लोक अलोक का वर्णन हो, उत्सर्पिणी अवसर्पिणी आदि कालों का कथन हो, मनुष्य आदि गतियों तथा गुणस्थान आदि का वर्णन हो वह करणानुयोग कहलाता है। जैसे त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, गोम्मटसार वगैरह।

करण शब्द का अर्थ गणितसूत्र अथवा आत्मा के परिणाम हैं इसलिये करणों का वर्णन करने वाले शास्त्र करणानुयोग कहे जाते हैं॥ ४४॥

३. चरणानुयोग का लक्षण.

गृहमेध्यनगाराणां, चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षांगम्।
चरणानुयोगसमयं, सम्यग्ज्ञानं विजानाति॥ ४५॥

अन्वार्थ—(सम्यग्ज्ञानम्) सम्यग्ज्ञान (गृहमेध्यनगाराणाम्) गृहस्थ और मुनियों के (चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्) चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारण स्वरूप (चरणानुयोग-समयम्) चरणानुयोग के शास्त्र को (विजानाति) अच्छी तरह जानता है।

कठिन शब्दार्थ—गृहमेधी—गृहस्थ। अनगार=मुनि। समय = शास्त्र॥ चरण = चारित्र।

भावार्थ—जिसमें गृहस्थ और मुनियों के चारित्र का वर्णन हो उसे चरणानुयोग कहते हैं। जैसे मूलाचार, अनगार-धर्मामृत, धर्मसंग्रह-श्रावकाचार, और रत्नकरण्ड-श्रावकाचार आदि।

४. द्रव्यानुयोग का लक्षण.

जीवाजीवसुतत्त्वे, पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(द्रव्यानुयोगदीपः) द्रव्यानुयोग रूपी दीपक (जीवाजीवसुतत्त्वे) जीव, अजीव तत्त्वों को (पुण्यापुण्ये) पुण्य-पाप को (बन्धमोक्षौ) बन्ध मोक्ष को (च) तथा (च) आस्रव संवर, निर्जरा आदि को (श्रुतविद्यालोकम्) भावश्रुतज्ञान रूप प्रकाश को (आतनुते) प्रकट करता है।

कठिन शब्दार्थ — = जीव = जिसमें ज्ञान दर्शन पाया जावे। अजीव = जिसमें ज्ञान दर्शन न पाया जावे। बन्ध = मिथ्यात्व आदि भावों से आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध होना। द्रव्य आस्रव = आत्मा में कर्मों का आना। संवर = नए कर्मों का नहीं आना। निर्जरा = पहले के कर्मों का एक-देश क्षय होना। मोक्ष = कर्मों का बिलकुल क्षय होना। द्रव्य=गुण और पर्यायों का समूह अथवा जिसमें उत्पाद (उत्पत्ति) व्यय (विनाश) और ध्रौव्य (स्थिरता) ये तीन गुण पाये जावें।

भावार्थ—जिसमें जीव आदि सात तत्त्वों, पुण्य और पाप तथा छह द्रव्यों का वर्णन हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। जैसे मोक्षशास्त्र, राजवार्तिक, द्रव्यसंग्रह आदि ॥ ४६ ॥

इति स्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचिते रत्नकरण्ड-श्रावकाचारे द्वितीयः परिच्छेदः॥

प्रश्नावली।

(१) सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं?

(२) तीसरे और चौथे अनुयोगों का लक्षण कहो?

(३) अनुयोग शब्द का क्या अर्थ है?

(४) मिथ्यादृष्टि का श्रुतज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलावेगा या नहीं ?
(५) राजवार्तिक, त्रिलोकसार, सागारधर्मामृत और गोम्मटसार ये ग्रन्थ किस किस अनुयोग के हैं ?

तीसरा परिच्छेद

सम्यक्चारित्र का वर्णन

चारित्र की आवश्यकता

आर्याछन्द

मोहतिमिरापहरणे, दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै, चरणं प्रतिपद्यतेसाधुः॥ ४७॥

अन्वयार्थ—(मोहतिमिरापहरणे) मोहरूपी अन्धकार के नष्ट होने पर (दर्शनलाभात्) सम्यग्दर्शन के पाने पर (अवाप्त-संज्ञानः) सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला (साधुः) भव्य पुरुष, (रागद्वेषनिवृत्त्यै) राग और द्वेष को दूर करने के लिये (चरणम्) चारित्र को (प्रतिपद्यते) धारण करता है।

कठिन शब्दार्थ—मोह = दर्शनमोह (मिथ्यात्व) राग = इष्टपदार्थों से प्रेम। द्वेष = अनिष्ट पदार्थों से बैर।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन का नाश होने पर सम्यग्दर्शन होता है और ऐसे भव्य को सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान हो जाता है। उसे, राग द्वेष दूर करने के लिये सम्यक्चारित्र अवश्य धारण करना चाहिये।

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः, कःपुरुषःसेवते नृपतीन्? ॥ ४८॥

अन्वयार्थ—(रागद्वेषनिवृत्तेः) राग और द्वेष के त्याग से

(हिंसादिनिवर्तना) हिंसा आदि पापों का त्याग (कृता भवति) अपने आप हो जाता है। 'क्योंकि' (अनपेक्षितार्थवृत्तिः) आजीविका आदि की इच्छा से रहित (कः पुरुषः) कौन पुरुष (नृपतीन् सेवते) राजाओं की सेवा करता है? अर्थात् कोई नहीं।

कठिन शब्दार्थ—हिंसादि = हिंसा आदि पांच पाप।

भावार्थ— जब राग द्वेष दूर हो जाते हैं तब हिंसा आदि पाप अपने आप छूट जाते हैं क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता। जैसे जिस पुरुष को रुपयों वगैरह की इच्छा नहीं होती वह कभी राजाओं की सेवा नहीं करता॥ ४८॥

चारित्र का लक्षण.

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।

पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्॥ ४९॥

अन्वयार्थ— (पापप्रणालिकाभ्यः) पाप की नाली स्वरूप (हिंसानृतचौर्येभ्यः) हिंसा, झूठ, चोरी (च) और (मैथुनसेवापरिग्रहाभ्याम्) कुशील तथा परिग्रह से (विरतिः) विरक्त होना (संज्ञस्य) सम्यग्ज्ञानी का (चारित्रम्) चारित्र [अस्ति] है।

भावार्थ—हिंसा आदि पांच पापों का त्याग करना सो सम्यक्चारित्र है। यह सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी के ही होता है॥४९॥

चारित्र के भेद और स्वामी।

सकलं विकलं चरणं, तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम्।

अनगाराणां विकलं, सागाराणां ससंगानाम्॥५०॥

अन्वयार्थ—(तत् चरणम्) वह चारित्र (सकलम्) सकल और (विकलम्) विकल [इति द्विविधम् अस्ति] इस तरह दो प्रकार का है [तन्मध्ये] उनमें से (सकलम्) सकलचारित्र (सर्वसङ्गविरतानाम्) समस्त परिग्रहों से रहित (अनगाराणाम्) मुनियों के और (विकलम्) विकल चारित्र (ससङ्गानाम्) परिग्रह सहित (सागाराणाम्) गृहस्थों के [भवति] होता है ?

कठिन शब्दार्थ—सकल=जिसमें पांचों पापों का बिलकुल त्याग किया किया जाता है, वह महाव्रत है । विकल=जिसमें पांच पापों का एकदेश-त्याग किया जाता है, वह अणुव्रत है ।

भावार्थ—सम्यक्चारित्र के दो भेद हैं । १ सकल चारित्र और २ विकल चारित्र । उनमें से सकलचारित्र मुनियों के और विकलचारित्र गृहस्थों के होता है ॥५०॥

विकलचारित्र का वर्णन ।

विकलचारित्र के भेद ।

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणम् ।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम् ॥५१॥

अन्वयार्थ—(गृहिणाम्) गृहस्थों का (चरणम्) चारित्र (अणुगुणशिक्षाव्रतात्मकम्) अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप (त्रेधा) तीन प्रकार का (तिष्ठति) है । ('पुनःतत्' त्रयम्) फिर वह तीन प्रकार का चारित्र (यथासंख्यम्) क्रम से (पञ्चत्रिचतुर्भेदम्) पांच, तीन और चार भेद वाला (आख्यातम्) कहा गया है ?

कठिन शब्दार्थ—अणुव्रत=पांच पापों का एकदेश त्याग। गुणव्रत=जो अणुव्रतों का उपकार करें, शिक्षाव्रत=जिनमें मुनिव्रत धारण करने की शिक्षा मिले।

भावार्थ—विकल चारित्र के तीन भेद हैं—१ अणुव्रत २ गुणव्रत और ३ शिक्षाव्रत। उनमें अणुव्रत के ५, गुणव्रत के ३ और शिक्षाव्रत के ४ भेद हैं। इस तरह सब मिला कर गृहस्थों के विकलचारित्र के १२ भेद होते हैं ॥५१॥

अणुव्रत का लक्षण।

प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो, व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

अन्वयार्थ—(प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप (स्थूलेभ्यः पापेभ्यः) स्थूल पापों से (व्युपरमणम्) विरक्त होना (अणुव्रतम्) अणुव्रत (भवति) है।

कठिन शब्दार्थ—प्राण=जिनके संयोग से जीव जीता है और वियोग से मरा हुआ कहलाता है। प्राण १० होते हैं—५ इन्द्रिय ३ बल (मनबल, वचनबल, कायबल) १ आयु और १ श्वासोच्छ्वास।

भावार्थ—हिंसा आदि स्थूल पापों का त्याग करना अणुव्रत कहलाता है। इसके अहिंसा आदि पांच भेद हैं ॥५२॥

अहिंसाणुव्रत का लक्षण।

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस हेतु से [पुरुषः] पुरुष (योगत्रयस्य) मन, वचन, काय रूप तीन योगों के (सङ्कल्पात्)

सङ्कल्प से और (कृतकारितमननात्) कृत, कारित अनुमोदना से (चरसत्वान्) त्रसजीवों को (न हिनस्ति) नहीं मारता है (तत्) उस हेतु को (निपुणाः) चतुर पुरुष (स्थूलवधात्) स्थूल हिंसा से (विरमणम्) विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ सङ्कल्प=‘मैं इस जीव को मारूँ’ ऐसा विचारना। कृत=स्वयं करना। कारित=दूसरे से कराना। मनन=अनुमोदना—किये हुए की प्रशंसा करना। योग=आत्मा के प्रदेशों में हलन चलन होना। इसके ३ भेद हैं १ मनोयोग २ वचन योग ३ काय योग। चरसत्व (त्रस जीव)=दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय।

भावार्थ—मन वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदनासे, सङ्कल्प कर स्थूल हिंसा का त्याग करना अहिंसाणुव्रत है ॥५३॥

अहिंसाणुव्रत के पांच अतिचार

छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद् व्युपरतेः पञ्च ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थ—(छेदनबन्धनपीडनम्) छेदन, बन्धन, पीडन (अतिभारारोपणम्) अतिभारारोपण (अपि च) और (आहारवारणा) भोजन न देना [एते] ये (पञ्च) पांच (स्थूलवधाद्व्युपरतेः) स्थूलहिंसा त्याग अर्थात् अहिंसाणुव्रत के (व्यतीचाराः) अतीचार * [सन्ति] हैं।

---

* इस पुस्तक में अतिचार के लिये निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया गया है—अतिचार, व्यतिचार, व्यतिक्रम, व्यतीपात, विक्षेप, अत्याश, व्यतीति, अतिगम, व्यतिलंघन।

कठिन शब्दार्थ—छेदन = नाक कान आदि अंगों का काटना। बन्धन = रस्सी वगैरह से बांधना। पीडन = कोड़ा लाठी वगैरह से पीटना। अतिभारारोपण = शक्ति से अधिक बोझा लादना। आहारवारण = आहार पानी का रोकना अथवा समय पर नहीं देना। व्यतीचार (दोष) = व्रतों का एकदेश भङ्ग होना।

सत्याणुव्रत का लक्षण.

स्थूलमलीकं न वदति, न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस हेतु से [पुरुषः] पुरुष (स्थूलम्) स्थूल (अलीकम्) झूठ को न (वदति) न स्वयं बोलता है और (न परान् वादयति) न दूसरों से बुलवाता है तथा (विपदे) विपत्ति के लिये (सत्यम् अपि) सत्यभी [न वदति न परान् वादयति] न बोलता है न दूसरों से बुलवाता है। (तत्) उस हेतु को (सन्तः) सज्जन पुरुष (स्थूलमृषावादवैरमणम्) स्थूल असत्य का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत (वदन्ति) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—अलीक, मृषावाद = झूठ।

भावार्थ—जिसके कहने पर अपने और दूसरे को राजा वगैरह से सज़ा भोगनी पड़े ऐसे स्थूल झूठ का त्याग करना तथा ऐसे सत्य का भी त्याग करना जो दूसरे को दुःख का कारण हो वह सत्याणुव्रत है।

सत्याणुव्रत के अतिचार

परिवादरहोऽभ्याख्या, पैशुन्यं कूटलेखकरणञ्च।
न्यासापहारितापि च, व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥५६॥

अन्वयार्थ—(परिवादरहोऽभ्याख्यापैशुन्यम्) परिवाद, रहोऽभ्याख्या, पैशुन्य (च) तथा (कूटलेखकरणम्) कूटलेख-

करण (अपिच) और (न्यासापहारिता) न्यासापहारिता [एते] ये (पञ्च) पांच (सत्यस्य) सत्याणुव्रत के (व्यतिक्रमाः) अतिचार [सन्ति] हैं।

कठिन शब्दार्थ—परिवाद = मोक्षमार्ग में विपरीत उपदेश देना। रहोऽभ्याख्या = एकान्त की, स्त्री पुरुषों के छिपी बातों को प्रकट करना। पैशुन्य-चुगली अथवा निन्दा करना, अर्थात् दूसरे को उघाड़ना। कूटलेखकरण = दूसरे को ठगने के लिये झूठे लेख लिखना। न्यासापहारिता = धरोहर हरना—किसी ने गहने वा रुपये वगैरह अमानत रखे हों और लेते समय गिनती में उसने भूल से कुछ कम मांगे तो अपने याद रहते हुए भी 'हां इतने ही थे ले जाओ' इत्यादि कहना।

भावार्थ—१. झूठा उपदेश देना, २. स्त्री पुरुषों की एकान्त की बात प्रकट करना, ३. शरीर की चेष्टा द्वारा अभिप्राय जानकर ईर्ष्या से दूसरे की गुप्त बात को प्रकट करना, ४. झूठे लेख लिखना और ५. किसी की धरोहर को हरना ये पांच सत्याणुव्रत के अतिचार हैं ॥५६॥

अचौर्याणुव्रत का लक्षण.

निहितं वा पतितं वा, सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम्।
न हरति यन्न च दत्ते, तदकृशचौर्यादुपारमणम् ॥५७॥

अन्वयार्थ—*(यत्) जो (निहितम्) रखे हुए (वा) अथवा (पतितम्) पड़े हुए (वा) अथवा (सुविस्मृतम्) भूले हुए (वा) अथवा (अविसृष्टम्) बिना दिये हुए (परस्वम्) पर द्रव्य को (न हरति) न स्वयं हरता है (च) और (न दत्ते) न दूसरे को देता है (तत्) वह (अकृशचौर्यात्) स्थूल चोरी से (उपारमणम्) विरक्त होना अर्थात् अचौर्याणुव्रत [अस्ति] है।

---

* यह अर्थ अणुव्रत को ही क्रिया का कर्ता मान कर किया जा रहा है।

भावार्थ—किसी की रखी हुई, पड़ी हुई, भूली हुई अथवा बिना दी हुई वस्तु को न स्वयं लेना और न उठाकर दूसरे को देना अचौर्याणुव्रत है ॥५७॥

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥

अन्वयार्थ–(चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः) चौरप्रयोग, चौरार्थादान, विलोप, सदृशसन्मिश्र और (हीनाधिकविनिमानम्) हीनाधिकविनिमान [एते] ये (पञ्च) पांच (अस्तेये) अचौर्याणुव्रत में (व्यतीपाताः) अतिचार [भवन्ति] होते हैं।

कठिन शब्दार्थ—चौरप्रयोग = चोरी करने की प्रेरणा करना, उपाय बताना आदि। चौरार्थादान = चोरी का माल खरीदना। विलोप = राजा वगैरह की आज्ञा का उल्लंघन करना (टाउन ड्यूटी, टैक्स नहीं चुकाना आदि) सदृशसन्मिश्र = अधिक मूल्य वाली वस्तु में उसके समान रूप वाली सस्ती चीज मिलाना। हीनाधिकविनिमान = नापने तोलने के गज बांट वगैरह कमती बढ़ती रखना।

भावार्थ—१. चोरी की प्रेरणा करना २. चोरी का माल लेना ३. टैक्स वगैरह नहीं चुकाना ४. अधिक मूल्य वाली वस्तु में कमती मूल्य की वस्तुएँ मिलाना और ५. नापने तोलने के बांट वगैरह घटती बढ़ती रखना ये पांच अचौर्याणुव्रत के अतिचार हैं ॥५८॥

ब्रह्मचर्याणुव्रत का लक्षण।

न तु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतेर्यत् ।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥५९॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (पापभीतेः) पाप के डर से (परदारान् दूसरे की स्त्रियों के प्रति (न तु) न तो (गच्छति) स्वयं गमन करता है (च) और (न परान्) न दूसरों को गमन कराता है (सा) वह (परदारनिवृत्तिः) परस्त्री-त्याग (अपि) अथवा (स्वदारसन्तोषनाम) स्वदारसन्तोष नाम का [अणुव्रतम्] अणुव्रत [भवति] होता है।

कठिन शब्दार्थ—परदार=जिसके साथ अपना धर्मानुकूल विवाह नहीं हुआ हो। स्वदार=जिसके साथ अपना धर्मानुकूल विवाह हुआ हो।

भावार्थ—पाप के डर से दूसरे की स्त्रियों के साथ न स्वयं व्यभिचार करना और न दूसरे को उस काम में प्रेरित करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है ॥५९॥

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार.

अन्यविवाहाकरणा—नङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः ।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥६०॥

अन्वयार्थ—(अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः) अन्यविवाहाकरण, अनङ्गक्रीडा, विटत्व, विपुलतृट् (च) और (इत्वरिकागमनम्) इत्वरिकागमन [एते पञ्च] ये पांच (अस्मरस्य) ब्रह्मचर्याणुव्रत के (व्यतीचाराः) अतिचार [सन्ति] हैं।

भावार्थ—१. दूसरे का विवाह कराना, २. काम सेवन के के लिये निश्चित अङ्गों से भिन्न अङ्गों द्वारा काम सेवन करना ३. शरीर तथा वचनों की गन्दी प्रवृत्ति करना ४. अपनी स्त्री के भोगने में भी अत्यन्त आसक्ति रखना और ५. व्यभिचारिणी स्त्रियों से सम्बन्ध रखना ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार हैं ॥६०॥

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत का लक्षण।

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥६१॥

अन्वयार्थ—(धनधान्यादिग्रन्थम्) धन धान्य आदि परिग्रह का (परिमाय) प्रमाण करके (ततः) उससे (अधिकेषु) अधिक में (निःस्पृहता) इच्छा रहित होना (परिमितपरिग्रहः) परिग्रहपरिमाण (अपि) अथवा (इच्छापरिमाणनाम) इच्छापरिमाण नाम का [अणुव्रतम्] अणुव्रत (स्यात्) होता है।

कठिन शब्दार्थ—धनधान्यादि = धन (गाय भैंस वगैरह) धान्य (गेहूँ चावल वगैरह) आदि ग्रन्थ = परिग्रह (दासी दास वगैरह)।

भावार्थ—अपनी आवश्यकता के अनुसार धन धान्य आदि के रखने का नियम कर उससे अधिक की इच्छा नहीं करना परिग्रहपरिमाणाणुव्रत है ॥ ६१ ॥

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के अतिचार

अतिवाहनातिसंग्रह-विस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च, विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थ—(अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि) अतिवाहन, अतिसंग्रह, अतिविस्मय, अतिलोभ और अतिभारवहन [एते] ये (पञ्च) पांच (परिमितपरिग्रहस्य) परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के (च) भी (विक्षेपाः) अतिचार (लक्ष्यन्ते) कहे जाते हैं।

कठिन शब्दार्थ—अतिवाहन = लोभ के वश से नौकर, बैल आदि को शक्ति से अधिक दूर तक लादे लेजाना। अतिसंग्रह = आगे चलकर इस से बहुत लाभ होगा ऐसा सोच कर बहुत संग्रह करना। अतिविस्मय = किसी

का विभव देखकर आश्चर्य करना। अतिलोभ = लाभ होने पर भी अधिक लोभ करना। अतिभारवहन = लोभ के वश से अधिक भार लादना।

भावार्थ १. अतिवाहन २. अतिसंग्रह ३. अतिविस्मय ४. अतिलोभ और ५. अतिभारवहन * ये परिग्रहपरिमाण-अणुव्रत के पांच अतिचार हैं ॥ ६२ ॥

अणुव्रत धारण करने का फल

पञ्चाणुव्रतनिधयो, निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम् ।
यत्रावधिरष्टगुणा, दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

अन्वयार्थ—(निरतिक्रमणाः) अतिचार रहित (पञ्चाणुव्रतनिधयः) पांच अणुव्रतरूपीनिधियां [तम्] उस (सुरलोकम्) स्वर्ग लोक को (फलन्ति) फलती हैं (यत्र) जहां पर (अवधिः) अवधिज्ञान (अष्टगुणाः) अणिमा आदि आठ गुण (च) और (दिव्यशरीरम्) सुन्दर शरीर आदि (लभ्यन्ते) प्राप्त होता है।

कठिन शब्दार्थ—अवधि=इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना मर्यादा लिये हुये रूपी पदार्थों को एकदेश स्पष्ट जानना। दिव्यशरीर = सात धातुओं से रहित वैक्रियिक शरीर ॥६३॥

भावार्थ—पांच अणुव्रतों का अतिचार रहित पालन करने से जीव स्वर्ग में पैदा होता है। उसे वहां जन्म से ही अवधिज्ञान, अणिमा आदि आठ गुण और मनोहर वैक्रियिक शरीर प्राप्त होता है ॥६३॥

पांच अणुव्रत धारण करने वाले पुरुषों में जगत्प्रसिद्ध होने वालों के नाम—

---

* यद्यपि अतिभारारोपण अहिंसाणुव्रत का भी अतिचार है तथापि वहां पशु को दुःख देने की इच्छा से अधिक भार लादा जाता है और यहां अधिक लोभ की इच्छा से।

अनुष्टुप् छन्द ।

मातंगो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः ।
नीलीजयश्च संप्राप्तः पूजातिशयमुत्तमम् ॥६४॥

अन्वयार्थ— मातङ्गः अहिंसाणुव्रत में यमपाल नामका चाण्डाल (च) और (धनदेवः) सत्याणुव्रत में धनदेव सेठ (ततः परः) उसके बाद अचौर्याणुव्रत में (वारिषेणः) वारिषेण राजकुमार (नीली) ब्रह्मचर्याणुव्रत में वणिक्पुत्री नीली (च) और (जयः) परिग्रहपरिमाणाणुव्रत में जयकुमार नामक राजपुत्र (उत्तमम् पूजातिशयम्) उत्तम पूजा के फल को (संप्राप्ताः) प्राप्त हुए हैं।

भावार्थ—यमपाल चाण्डाल, धनदेव, वारिषेण, नीली और जयकुमार क्रम से पांच अणुव्रतों में प्रसिद्ध हुए हैं ॥६४॥

पांच पापों में प्रसिद्ध होने वाले पुरुषों के नाम।

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि ।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥६५॥

अन्वयार्थ —'पांच पापों में' (यथाक्रमम्) क्रम से (धनश्री सत्यघोषौ) धनश्री, सत्यघोष (अपि च) और (तापसारक्षकौ) तापसी, यमदण्ड कोतवाल (तथा) तथा (श्मश्रुनवनीतः) श्मश्रुनवनीत नाम का गृहस्थ (उपाख्येयाः) उदाहरण देने के योग्य हैं—अर्थात् प्रसिद्ध हुए हैं।

श्रावक के आठ मूलगुण।

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

अन्वयार्थ—(श्रमणोत्तमाः) जिनेन्द्रभगवान् (मद्यमांसमधुत्यागैः सह) मद्य, मांस और मधु के त्याग के साथ (अणुव्रतपञ्चकम्) पांच अणुव्रतों को (गृहिणाम्) गृहस्थों के (अष्टौ) आठ (मूलगुणान्) मूलगुण (आहुः) कहते हैं ॥ ६६ ॥

कठिन शब्दार्थ—मद्य=शराब वगैरह। मांस=त्रस जीवों का शरीर। मधु=शहद। मूलगुण=श्रावकों के मुख्य गुण।

भावार्थ—मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग और अहिंसा आदि पांच अणुव्रत ये श्रावकों के आठ मूलगुण* हैं।

इति स्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचिते रत्नकरण्ड-
श्रावकाचारे तृतीयः परिच्छेदः।

प्रश्नावली।

(१) सम्यक् चारित्र किसके होता है? और वह क्यों धारण होना चाहिये।
(२) चारित्र के कितने भेद हैं?
(३) इस ग्रन्थ में सकल चारित्र का वर्णन क्यों नहीं किया?
(४) अणुव्रत किसे कहते हैं? उसके कितने भेद हैं? अणुव्रत धारण करने का क्या फल है?
(५) अतिचार किसे कहते हैं? सत्याणुव्रत के अतिचार बताओ।
(६) अचौर्याणुव्रत का क्या स्वरूप है?
(७) ब्रह्मचर्याणुव्रत को निर्दोष रूप से पालन करने के लिये किस किस का त्याग करना होगा।
(८) पांच पापों में प्रसिद्ध होने वाले पुरुषों के नाम बताओ।
(९) मूलगुण किसे कहते हैं?

---

* किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग और पांच उदम्बर फलों के त्याग को आठ मूलगुण बताया है।

चतुर्थ परिच्छेद।

गुणव्रतों का वर्णन

गुणव्रत का लक्षण व नाम

आर्याछन्द

दिग्व्रतमनर्थदण्ड—व्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणाना—माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ।६७।

अन्वयार्थ—(आर्याः) श्रेष्ठ पुरुष (गुणानाम्) गुणों के (अनुबृंहणात्) बढ़ाने से (दिग्व्रतम्) दिग्व्रत (अनर्थदण्डव्रतम्) अनर्थदण्डव्रत (च) और (भोगोपभोगपरिमाणम्) भोगोपभोगपरिमाणव्रत को (गुणव्रतानि) गुणव्रत * (आख्यान्ति) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—गुण - आठ मूलगुण

भावार्थ—जो आठ मूलगुणों को बढ़ावें उन्हें गुणव्रत कहते हैं वे तीन होते हैं। १ दिग्व्रत २ अनर्थदण्डव्रत और ३ भोगोपभोगपरिमाणव्रत ॥ ६७ ॥

दिग्व्रत का स्वरूप।

दिग्वलयं परिगणितं, कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रत—मामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥ ६८ ॥

अन्वयार्थ—(अणुपापविनिवृत्त्यै) सूक्ष्म पापों को भी दूर करने के लिये (दिग्वलयम्) दसों दिशाओं का (परिगणितं कृत्वा) परिमाण करके (आमृति) मरण पर्यन्त (अहम्) मैं (अतःबहिः) इसके बाहर (न यास्यामि) नहीं जाऊँगा (इति सङ्कल्पः) ऐसी प्रतिज्ञा करना (दिग्व्रतम्) दिग्व्रत [अस्ति] है।

* किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत इन तीन को गुणव्रत माना है।

कठिन शब्दार्थ—दिग्वलय = दस दिशाओं का समूह—१ उत्तर २ दक्षिण ३ पूर्व ४ पश्चिम ५ ऐशान, ६ आग्नेय ७ नैऋत्य ८ वायव्य ९ ऊर्ध्व १० अधः।

भावार्थ—मैं मरण पर्यन्त अमुकदिशा में अमुक जगह से आगे नहीं जाऊंगा, इस तरह दसों दिशाओं में आने जाने का नियम करना दिग्व्रत है ॥ ६८ ॥

दिग्व्रत धारण करने की मर्यादा।

मकराकरसरिदटवी—गिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः।
प्राहुर्दिशां दशानां, प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥ ६९ ॥

अन्वयार्थ — [आचार्याः] आचार्य (दशानां दिशाम्) दशों दिशाओं के (प्रतिसंहारे) त्याग में (प्रसिद्धानि) प्रसिद्ध २ (मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि) समुद्र, नदी, वन, पहाड़, देश और योजन पर्यन्त की (मर्यादाः) सीमा (प्राहुः) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—योजन=चार कोस।

भावार्थ—दिग्व्रत में प्रसिद्ध समुद्र नदी वन पहाड़ देश योजन आदि तक की प्रतिज्ञा की जाती है ॥ ६९ ॥

दिग्व्रत धारण करने का फल

अवधेर्बहिरणुपाप-प्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।
पञ्चमहाव्रतपरिणति—महाव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥ ७० ॥

अन्वयार्थ—(दिग्व्रतानि) दिग्व्रतों को (धारयताम्) धारण करने वाले पुरुषों के (अणुव्रतानि) अणुव्रत (अवधेः) मर्यादा के (बहिः) बाहर (अणुपापप्रतिविरतेः) सूक्ष्म पापों की भी निवृत्ति

होने से (पञ्चमहाव्रतपरिणतिम्) पांच महाव्रतों की समानता को (प्रपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—दिग्व्रतधारी पुरुष मर्यादा के बाहर नहीं आता जाता इसलिये वह सूक्ष्म पाप भी नहीं करता। इसी कारण उसके अणुव्रत, महाव्रत के समान हो जाते हैं॥ ७० ॥

मर्यादा के बाहर गुणव्रतों के साक्षात् महाव्रत न होने का कारण

प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः ।
सत्त्वेन दुरवधारा, महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥ ७१ ॥

अन्वयार्थ—(प्रत्याख्यानतनुत्वात्) प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ का मन्द उदय होने से (मन्दतराः) अत्यन्त मन्द 'अतएव' (सत्त्वेन) सत्ता के द्वारा (दुरवधाराः) कठिनाई से जानने के योग्य (चरणमोहपरिणामाः) चारित्र मोह के परिणाम [एव] ही (महाव्रताय) महाव्रत के लिये (प्रकल्प्यन्ते) उपचार से कहे जाते हैं।

कठिन शब्दार्थ—प्रत्याख्यान = प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, (इस प्रकृति के उदय से मुनियों को चारित्र नहीं हो पाता)।

भावार्थ—जब प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ का क्षयोपशम हो जाता है तब महाव्रत होते हैं परन्तु दिग्व्रती के प्रत्याख्यानावरण कषाय का मन्द उदय रहता है। ॥ ७१ ॥

महाव्रत का लक्षण :

पञ्चानां पापानां, हिंसादीनां मनोवचःकायैः ।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥

अन्वयार्थ—(हिंसादीनाम्) हिंसा आदि (पञ्चानाम्) पांच (पापानाम्) पापों का (मनोवचःकायैः) मन वचन काय

और (कृतकारितानुमोदैः) कृत कारित अनुमोदना के द्वारा (त्यागः) त्याग करना (महाव्रतम्) महाव्रत [अस्ति है 'और वह' (महतां तु) महापुरुषों के ही [जायते] होता है .

कठिन शब्दार्थ—महत्=छठवें प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में रहने वाले मुनि । तु=नियम से .

भावार्थ—पांच पापों का मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना से त्याग करना महाव्रत है । यह महाव्रत मुनियों के ही हो सकता है ॥७२॥

दिग्व्रत के अतिचार ।

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् ।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥७३॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः) ऊर्ध्वव्यतिपात, अधस्ताद्व्यतिपात, तिर्यग्व्यतिपात, (क्षेत्रवृद्धिः) क्षेत्रवृद्धि और (अवधीनां विस्मरणम्) अवधिविस्मरण [एते] ये (पञ्च) पांच (दिग्विरतेः) दिग्व्रत के (अत्याशाः) अतिचार (मन्यन्ते) माने माने जाते हैं ।

कठिन शब्दार्थ—ऊर्ध्वव्यतिपात=ऊर्ध्व दिशा की मर्यादा का उल्लंघन करना । अधस्ताद्व्यतिपात=अधो दिशा की मर्यादा का उल्लंघन करना । तिर्यग्व्यतिपात=दिशा और विदिशाओं की मर्यादा का उल्लंघन करना । क्षेत्र-वृद्धि=किसी दिशा की सीमा घटाकर किसी दिशा की बढ़ा लेना । अवधि-विस्मरण=की हुई मर्यादा का भूल जाना ।

भावार्थ—अज्ञान अथवा प्रमाद से १. ऊपर, २. नीचे तथा ३. समधरातल पर प्रतिज्ञा की हुई क्षेत्र की सीमा का उलङ्घन करना ४. क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा लेना और ५. की हुई मर्यादा को भूल जाना ये ५ दिग्व्रत के अतिचार हैं ।

अनर्थदण्डव्रत का लक्षण।

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।

विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥ ७४ ॥

अन्वयार्थ—(व्रतधराग्रण्यः) व्रतधारियों में प्रधान-तीर्थंकर भगवान् (दिगवधेः) दिशाओं की मर्यादा के (अभ्यन्तरम्) भीतर (अपार्थिकेभ्यः) प्रयोजन रहित (सपापयोगेभ्यः) पापसहित प्रवृत्तियों से (विरमणम्) विरक्त होने को (अनर्थदण्डव्रतम्) अनर्थदण्डव्रत (विदुः) मानते हैं॥

भावार्थ—मर्यादा के भीतर विना प्रयोजन वाले सब पापों का त्याग करना अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।

अनर्थदण्ड के भेद।

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च।

प्राहुः प्रमादचर्य्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥ ७५ ॥

अन्वयार्थ—(अदण्डधराः) दण्ड को नहीं धारण करने वाले गणधर आदि (पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः) पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति 'और' (प्रमादचर्याम्) प्रमादचर्य्या इन [पञ्च] पांच (अनर्थदण्डान्) अनर्थदण्डों को (प्राहुः) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—दण्ड = मन वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति।

भावार्थ—१ पापोदेश, २ हिंसादान, ३ अपध्यान, ४ दुःश्रुति और ५ प्रमादचर्य्या ये पांच अनर्थदण्ड हैं, इनका त्याग करना अनर्थदण्डव्रत है॥ ७५ ॥

भावार्थ—१. पापोपदेश २. हिंसादान ३. अपध्यान ४. दुःश्रुति और ५. प्रमादचर्या ये पांच अनर्थदण्ड हैं इनका त्याग करना अनर्थदण्ड व्रत है ॥ ७५ ॥

पापोपदेश अनर्थदण्ड का लक्षण

तिर्यक्क्लेशवणिज्या–हिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
कथाप्रसंगप्रसवः, स्मर्तव्यः पाप उपदेशः ॥७६॥

अन्वयार्थ—(तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनां) तिर्यञ्चों को क्लेश देने वाली तथा व्यापार, हिंसा आरम्भ, ठगाई आदि की (कथाप्रसङ्गप्रसवः) कथाओं का प्रसङ्ग उत्पन्न करना (पापःउपदेशः) पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड (स्मर्तव्यः) जानना चाहिये ॥

कठिन शब्दार्थ—प्रसङ्ग=बार बार कहना ।

भावार्थ—तिर्यञ्चों को क्लेश देने वाली, व्यापार, हिंसा, आरम्भ तथा माया आदि की कथाओं का बार बार उपदेश देना पापोपदेश अनर्थदण्ड है। इसका त्याग करना 'पापोपदेशानर्थदण्ड व्रत' है ॥७६॥

हिंसादान अनर्थदण्ड का लक्षण

परशुकृपाणखनित्र–ज्वलनायुधशृंगिशृंखलादीनाम् ।
वधहेतूनां दानं, हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥७७॥

अन्वयार्थ—(बुधाः) विद्वान् पुरुष (परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृङ्खलादीनाम्) फरशा, तलवार, गेंती कुदाली अग्नि, शस्त्र, विष और सांकल आदि (वधहेतूनाम्) हिंसा के कारणों के (दानम) देने को (हिंसादानम्) हिंसादान नामक अनर्थदण्ड (ब्रुवन्ति) कहते हैं।

शब्दार्थ—हरितिक्=सिंगिया आदि विष।

भावार्थ—फरशा, तलवार, गैंती, फावड़ा, कुदाली, अग्नि, हथयार, विष और सांकल आदि हिंसा के साधन मांगने पर किसी दूसरे को देना हिंसादान नामक अनर्थदण्ड है। इसका त्याग करना 'हिंसादान' अनर्थदण्डव्रत है।

अपध्यान अनर्थदण्ड का लक्षण।

वधबन्धच्छेदादे, र्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।

आध्यानमपध्यानं, शासति जिनशासने विशदाः ॥७८॥

अन्वयार्थ—(जिनशासने) जिनशासन में (विशदाः) चतुर पुरुष (द्वेषात्) द्वेष से (वधबन्धच्छेदादेः) किसी के नाश होने, बन्ध होने तथा कट जाने आदि का (च) और (रागात्) राग से (परकलत्रादेः) परस्त्री आदि का (आध्यानं) निरन्तर चिन्तवन करने को (अपध्यानम्) अपध्यान नामक अनर्थदण्ड (शासति) कहते हैं।

भावार्थ—राग से दूसरे के स्त्री, पुत्र आदि इष्ट जनों का और द्वेष से शत्रुओं का नाश आदि विचारना अपध्यान नामक अनर्थदण्ड है। इसका त्याग करना 'अपध्यान अनर्थदण्डव्रत' है ॥७८॥

दुःश्रुति अनर्थदण्ड का लक्षण।

आरम्भसंगसाहस—मिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः।

चेतः कलुषयतां श्रुति—रवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७९॥

अन्वयार्थ — (आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमद-मदनैः) आरम्भ, परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, द्वेष, राग, गर्व और काम के द्वारा (चेतः) चित्त को (कलुषयतां) मलिन

करने वाले (अवधीनां) शास्त्रों का (श्रुतिः) सुनना (दुःश्रुतिः) दुःश्रुति नामक अनर्थदण्ड (भवति) है।

भावार्थ—आरम्भ परिग्रह वगैरह की चर्चा से चित्त को मलिन करने वाले शास्त्रों का सुनना 'दुःश्रुति नामक अनर्थदण्ड' है ॥७९॥

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड का लक्षण।

क्षितिसलिलदहनपवना-रम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्।

सरणं सारणमपि च, प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥

अन्वयार्थ—(विफलं) प्रयोजन रहित (क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं) पृथिवी। पानी। अग्नि और पवन के आरम्भ करने (वनस्पतिच्छेदं) वनस्पति छेदने (सरणं) घूमने (च) और (सारणं अपि) दूसरे के घुमाने को भी (प्रमादचर्यां) प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड (प्रभाषन्ते) कहते हैं?

भावार्थ — व्यर्थ ही जमीन खोदना, पानी बिलोना, आग जलाना, हवा रोकना, फल फूल तोड़ना, यहां वहां घूमना और दूसरे को भी घुमाना प्रमादचर्या अनर्थदण्ड है। इसका त्याग करना प्रमादचर्या अनर्थदण्डव्रत' है ॥८०॥

अनर्थदण्डव्रत के अतिचार।

कन्दर्पं कौत्कुच्यं, मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च।

असमीक्ष्य चाधिकरणं, व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥८१॥

अन्वयार्थ—(कन्दर्पं) कन्दर्प (कौत्कुच्यं) कौत्कुच्य (मौखर्यं) मौखर्य (अतिप्रसाधनं) अतिप्रसाधन (च) और (असमीक्ष्य अधिकरणं) असमीक्ष्याधिकरण [पने, ये (पञ्च)

पाँच (अनर्थदण्डकृद्विरतेः) अनर्थदण्डव्रत के (व्यतीतयः) अति-चार [सन्ति] हैं।

कठिन शब्दार्थ—कन्दर्प=राग से हँसी मिले गन्दे शब्द बोलना। कौत्कुच्य=हास्य और अश्लील वचन सहित काय से कुचेष्टा करना। मौखर्य=आवश्यकता से अधिक बोलना। अतिप्रसाधन=भोगोपभोग की चीजों को आवश्यकता से अधिक रखना। असमीक्ष्याधिकरण=बिना विचारे काम करना।

भावार्थ—कन्दर्प आदि दोषों को छोड़कर व्रतों का शुद्ध रीति से पालना चाहिये।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत का लक्षण।

अक्षार्थानां परिसं—ख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।

अर्थवतामप्यवधौ, रागरतीनां तनूकृतये ॥८२॥

अन्वयार्थ—(रागरतीनां) राग आदि भावों को (तनूकृतये) कमकरने के लिये (अवधौ अपि) मर्यादा के भीतर भी (अर्थवतां) प्रयोजन वाले (अक्षार्थानां) इन्द्रियों के विषयों का (परिगणनम्) प्रमाण करना (भोगोपभोगपरिमाणं) भोगोप-भोगपरिमाण व्रत [अस्ति] है।

कठिन शब्दार्थ—अक्षार्थ=पांच इन्द्रिय के विषय—स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द।

भावार्थ—राग भावों को घटाने के लिये पञ्च इन्द्रियों के विषयों का नियम करना 'भोगोपभोगपरिमाणव्रत है ॥८२॥

भोग और उपभोग का लक्षण।

भुक्त्वा परिहातव्यो, भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।

उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पाञ्चेन्द्रियो विषयः ॥८३॥

अन्वयार्थ—(भुक्त्वा) भोग कर (परिहातव्यः) छोड़ने योग्य (अशनवसनप्रभृतिः) भोजन वस्त्र आदि (पाञ्चेन्द्रियः) पांच इन्द्रिय सम्बन्धी (विषयः) विषय (भोगः) भोग है (च) और (भुक्त्वा) भोगकर (पुनः) फिर से (भोक्तव्यः) भोगने के योग्य पांच इन्द्रियों का विषय (उपभोगः) उपभोग [अस्ति] है ।

भावार्थ—जो एक बार भोगने में आवे उसे भोग कहते हैं जैसे भोजन वगैरह और जो बार बार भोगने में आवे उसे उपभोग कहते हैं जैसे कपड़ा वगैरह ॥८३॥

भोगोपभोगपरिमाणव्रत में विशेष त्याग ।

त्रसहतिपरिहरणार्थं, क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये ।
मद्यं च वर्जनीयं, जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

अन्वयार्थ—(जिनचरणौ शरणम् उपयातैः) जिनेन्द्र भगवान के चरणों की शरण में आये हुए श्रावकों को (त्रसहतिपरिहरणार्थम्) त्रसजीवों की हिंसा दूर करने के लिये (क्षौद्रम्) मधु (पिशितम्) मांस (च) और (प्रमादपरिहृतये) प्रमाद दूर करने के लिये (मद्यम्) मदिरा (वर्जनीयम्) छोड़ देनी चाहिये ।

भावार्थ—मधु, मांस और मद्य इनसे त्रसहिंसा होती है । श्रावकों को इनके समान दूसरे पदार्थ भी छोड़देने चाहिये।

अल्पफलबहुविघाता-न्मूलकमार्द्राणि शृंगवेराणि ।
नवनीतनिम्बकुसुमम्, कैतकमित्येवमवहेयम् ॥८५॥

अन्वयार्थ—(अल्पफलबहुविघातात्) फल थोड़ा और हिंसा अधिक होने से (आर्द्राणि) गीले (शृङ्गवेराणि) अदरक (मूलकम्) मूली (नवनीतनिम्बकुसुमम्) मक्खन, नीम के फूल

(कैतकम) केतकी के फूल 'तथा' (इति एवम्) इनके समान और दूसरे पदार्थ भी (अवहेयं) छोड़ने चाहिये ।

भावार्थ—मूली आदि खाने से लाभ कम और उन्हीं में पैदा होने वाले सूक्ष्म जीवों की हिंसा अधिक होती है इस लिये ऐसे कन्दमूल वगैरह छोड़ देने चाहिये ।

व्रत का लक्षण ।

यदनिष्टं तदुव्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसन्धिकृताविरति–र्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥८६॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो वस्तु (अनिष्टम्) अनिष्ट [अस्ति] है (तत्) उसे (जह्यात्) छोड़ना चाहिये (च) और (यत्) जो (अनुपसेव्यम्) अनुपसेव्य [अस्ति] है (एतत् अपि) उसे भी (जह्यात्) छोड़ देना चाहिये 'क्योंकि' (योग्यात् विषयात्) योग्य विषय से (अभिसन्धिकृता) भावपूर्वक की गई (विरतिः) विरक्ति [एव] ही (व्रतम्) व्रत (भवति) होता है ।

कठिन शब्दार्थ—अनिष्ट=जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी हितकर न हो, जैसे खांसी के रोग वाले को इमली आदि । अनुपसेव्य=जो उत्तम पुरुषों के द्वारा सेवन करने योग्य न हो, जैसे गोमूत्र लार वगैरह ।

भावार्थ—जो वस्तु अनिष्ट और अनुपसेव्य है उसे भी छोड़ देना चाहिये । क्योंकि योग्य विषयों का भाव (विचार) पूर्वक त्याग करना ही व्रत कहलाता है ॥ ८६ ॥

भोगोपभोगपरिमाण व्रत के भेद और यम नियम का लक्षण ।

नियमो यमश्च विहितौ, द्वेधा भोगोपभोगसंहारे ।
नियमः परिमितकालो, यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

अन्वयार्थ—(भोगोपभोगसंहारे) भोग-उपभोग के त्याग में (नियमः) नियम (च) और (यमः) यम (द्विधा) दो प्रकार के त्याग (विहितौ) कहे गये हैं। [तत्र] उनमें (परिमितकालः) समय की मर्यादा सहित त्याग (नियमः) नियम [उच्यते] कहलाता है और [यः जो (यावज्जीवम्) जीवन पर्यन्त (ध्रियते) धारण किया जाता है (सः) वह (यमः) यम है।

दिन महीना वर्ष आदि काल की सीमा नियत कर त्याग करना नियम और जीवन के लिये त्याग करना यम कहलाता है।

नोट—व्रतीपुरुष को अभक्ष्य, अनिष्ट और अनुपसेव्य पदार्थों का त्याग जीवन पर्यन्त के लिये ही करना चाहिये पर योग्य पदार्थों का त्याग समय की मर्यादा लेकर भी किया जा सकता है ॥ ८७ ॥

नियम करने की विधि.

भोजनवाहनशयन–स्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु ।
ताम्बूलवसनभूषण-मथसंगीतगीतेषु ॥ ८८ ॥

अद्य दिवा रजनी वा, पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा ।
इति कालपरिच्छित्त्या, प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

अन्वयार्थ—(भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु) भोजन, सवारी, शय्या, स्नान, पवित्र अङ्गलेपन, और फूलों "तथा" (ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसंगीतगीतेषु) पान, कपड़ा, आभूषण, कामसेवन, संगीत और गीत के विषय में (अद्य) घड़ी घंटा वगैरह (दिवा) एकदिन (वा) अथवा (रजनी) एक रात (पक्षः) एक पक्ष (मासः) एक माह (तथा) तथा (ऋतुः) दो माह (वा) अथवा (अयनम्) छह माह (इति) इस तरह (कालपरिच्छित्त्या) समय के विभाग से (प्रत्याख्यानम्) त्याग करना (नियमः) नियम (भवेत्) होता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

कठिन शब्दार्थ—शयन = पलंग, खाट, गद्दा, तकिया। पवित्र अनुराग = उत्तम केशर आदि लेपना। मन्मथ = कामसेवन। संगीत = नृत्य और बाजे के साथ गाना। गीत = केवल गाना। पक्ष = पखवाड़ा—पन्द्रह दिन। ऋतु = दो माह-(एक वर्ष में दो दो माह की ६ ऋतुएं होती हैं—१ बसन्त २ ग्रीष्म ३ वर्षा ४ शरद् ५ हेमन्त और ६ शिशिर) अयन = छह माह (एक वर्ष में छह छह माह के सूर्य के दो अयन (मार्ग) होते हैं—१ उत्तरायण २. दक्षिणायन।

भावार्थ—भोजन सवारी आदि भोग-उपभोग की सामग्री का दिन, रात, महीना आदि काल की मर्यादा लेकर त्याग करना चाहिये वही नियम कहलाता है ॥ ८८ ॥ ८६ ॥

भोगोपभोगपरिमाणव्रत के अतिचार.

विषयविषतोऽनुपेक्षा—नुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवो ।
भोगोपभोगपरिमा—व्यतिक्रमाःपञ्च कथ्यन्ते ॥ ६० ॥

अन्वयार्थ—(विषयविषतः) विषय रूपी विष में (अनुपेक्षा) आदर करना, (अनुस्मृतिः) याद करना (अतिलौल्यम्) अधिक लालसा (अतितृषानुभवौ) अधिक तृषा और अधिक अनुभव [एते] ये (पञ्च) पांच (भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः) भोगोपभोग-परिमाणव्रत के अतिचार (कथ्यन्ते) कहे जाते हैं।

कठिन शब्दार्थ—अनुपेक्षा = आसक्त होना। अनुस्मृति-भोगे हुए विषयों को याद करना। अतिलौल्य = इस भव के विषयों को भोगने में अत्यन्त लालसा रखना। अतितृषा = परभव में भोगों की अधिक तृष्णा रखना। अत्यनुभव = विषय नहीं भोगता हुआ भी 'विषय भोगता हूँ' ऐसा अनुभव करना।

भावार्थ—विषय रूप विष में १. आदर रखना, २. भोगे हुए विषयों को बार बार याद करना ३. वर्तमान के भोगों में लालसा रखना ४. भविष्यत् के भोगों की तृष्णा रखना और विषयों के

अभाव में भी 'अनुभव कर रहा हूं' ऐसी भावना होना ये पांच भोगोपभोगपरिमाणव्रत के अतिचार हैं ॥ ६० ॥

इति श्रीस्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचित रत्नकरण्ड-
श्रावकाचारे चतुर्थः परिच्छेदः ॥

अन्तर-प्रदर्शन

अणुव्रत-महाव्रत

एकदेश और सर्वदेश का अन्तर है। अणुव्रत में पांच पापों का एकदेश त्याग होता है और महाव्रत में सर्वदेश।

दिग्व्रत-अनर्थदण्डव्रत—

दिग्व्रत में मर्यादा के बाहर पापोपदेश वगैरह का त्याग होता है पर अनर्थदण्डव्रत में मर्यादा के भीतर भी त्याग होता है।

भोग-उपभोग—

जो एकबार भोगने में आवे वह भोग और जो बार बार भोगने में आवे वह उपभोग है।

यम-नियम—

समय की मर्यादा लेकर त्याग करना नियम और जीवन पर्यन्त के लिये त्याग करना यम कहलाता है।

अणुव्रत-गुणव्रत —

अणुव्रत मुख्य व्रत है और गुणव्रत उसके सहायक या रक्षक होते हैं।

प्रश्नावली

(१) भोग और उपभोग, यम और नियम में क्या अन्तर है।

(२) अनर्थदण्ड के कितने भेद हैं ? तीसरे और पांचवें अनर्थ दण्ड का स्वरूप कहो।

(३) नीचे लिखे हुए शब्दों के अर्थ बताओ—मकराकर, ऋतु, अयन, अनुप्रेक्षा, अशीति, व्यतिक्रम, असन, प्रभृति, कौत्कुच्य ।

(४) दिग्व्रत का धारी पुरुष मर्यादा के बाहर तीर्थयात्रा के लिये जा सकता है या नहीं ?

(५) दिग्व्रत के अतिचार कहो । व्रत का क्या लक्षण है ?

पंचम परिच्छेद

शिक्षाव्रतों का वर्णन

शिक्षाव्रतों के भेद और नाम

आर्याछन्द

देशावकाशिकं वा, सामयिकं प्रोषधोपवासो वा ।
वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥ ९१ ॥

अन्वयार्थ—(देशावकाशिकम्) देशावकाशिक, (वा) तथा (सामयिकम्) सामायिक (प्रोषधोपवासः) प्रोषधोपवास (वा) तथा (वैयावृत्यं) वैयावृत्य [एतानि] ये (चत्वारि) चार (शिक्षा व्रतानि) (शिष्टानि) कहे गये हैं ।

भावार्थ—शिक्षाव्रत* के चार भेद हैं १ देशावकाशिक २. सामायिक ३. प्रोषधोपवास और ४. वैयावृत्य ॥९१॥

देशावकाशिक शिक्षा व्रत का लक्षण

देशावकाशिकं स्यात्, कालपरिच्छेदनेन देशस्य ।
प्रत्यहमणुव्रतानां, प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थ—' दिग्व्रत में परिमाण किये हुए ' (विशालस्य देशस्य) विस्तृत क्षेत्र का (कालपरिच्छेदनेन) घड़ी घंटा आदि

*किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने 'सामायिक' प्रोषधोपवास,' 'भोगोपभोगपरिमाण' और 'अतिथिसंविभाग' इन चार को शिक्षाव्रत कहा है ।

समय के विभाग से (प्रत्यहम्) प्रतिदिन (प्रतिसंहारः) संकोच करना (अणुव्रतानाम्) अणुव्रतधारियों का (देशावकाशिकम्) देशावकाशिक नाम का शिक्षाव्रत (स्यात्) है।

भावार्थ—दिग्व्रत की, की हुई बड़ी मर्यादा में से अपने प्रयोजन के अनुसार क्षेत्र का नियम करना देशावकाशिकव्रत है। इसी का दूसरा नाम देशव्रत है ॥ ९२ ॥

देशावकाशिकव्रत में क्षेत्र की मर्यादा।

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानांच।
देशावकाशिकस्य, स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थ—(तपोवृद्धाः) तपसे वृद्ध गणधरादिक देव (गृहहारिग्रामाणाम्) घर, कटक, गांव (च) और (क्षेत्रनदीदाव-योजनानाम्) खेत, नदी, वन तथा योजन आदि को (देशावका-शिकस्य) देशावकाशिकव्रत की (सीम्नाम्) सीमारूप से (स्मरन्ति) स्मरण करते हैं।

कठिन शब्दार्थ—हारि = कटक (छावनी), दर्शनीय सुन्दर स्थान अथवा गांव के पास का जङ्गल, जिसे हिंदी में हार कहते हैं।

देशावकाशिकव्रत में काल की मर्यादा.

सम्वत्सरमृतुमयनं, मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च।
देशावकाशिकस्य, प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥ ९४ ॥

अन्वयार्थ—(प्राज्ञाः) विद्वान् पुरुष (सम्वत्सरम्) वर्ष (ऋतुम्) दो माह (अयनम्) छह माह, (मासचतुर्मासपक्षम्) एक माह, चार माह, एक पक्ष (च) और (ऋक्षम्) नक्षत्र को (देशावकाशिकस्य) देशावकाशिकव्रत की (कालावधिम्) समय की मर्यादा (प्राहुः) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—ऋक्ष = अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि २८ नक्षत्र। ये नक्षत्र चन्द्रभुक्ति और सूर्यभुक्ति दोनों की अपेक्षा होते हैं। इनके रहने का जितना काल है उतने समय की मर्यादा नक्षत्र की मर्यादा कहलाती है।

भावार्थ—देशावकाशिकव्रत में एक वर्ष, छह माह, चार माह, दो माह, एक माह, एक पक्ष अथवा एक नक्षत्र के उदय तक की काल की मर्यादा की जाती है ॥ ६४ ॥

देशावकाशिक शिक्षाव्रत का फल

सीमान्तानां परतः, स्थूलेतरपञ्चपापसंत्यागात्।
देशावकाशिकेन च, महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थ—(सीमान्तानाम परतः) मर्यादा के बाहर (स्थूलेतरपंचपापसंत्यागात्) स्थूल और सूक्ष्म रूप पांचों पापों का भले प्रकार त्याग होने से (देशावकाशिकेन च) देशावकाशिक व्रती के द्वारा भी (महाव्रतानि) महाव्रत (प्रसाध्यन्ते) साधे जाते हैं।

भावार्थ—दिग्व्रत की तरह देशावकाशिक व्रत में भी मर्यादा के बाहर आना जाना नहीं होने से स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों पापों का त्याग हो जाता है इसलिये देशावकाशिक शिक्षाव्रती के भी उपचार से महाव्रत कहे जाते हैं ॥६५॥

देशावकाशिक व्रत के अतिचार

प्रेषणशब्दानयनं, रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य, व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥६६॥

अन्वयार्थ—(प्रेषणशब्दानयनम्) प्रेषण, शब्द, आनयन, (रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ) रूपाभिव्यक्ति और पुद्गलक्षेप [एते] ये (पंच) पांच (देशावकाशिकस्य) देशावकाशिक शिक्षाव्रत के (अत्ययाः) अतिचार हैं।

कठिन शब्दार्थ—१ प्रेषण = स्वयं मर्यादा के भीतर रहते हुए किसी दूसरे को मर्यादा के बाहर अपने कार्य के लिये भेजना। २. शब्द = स्वयं मर्यादा के भीतर रह कर बाहर काम करने वालों को खांस कर या अन्य किसी शब्द के द्वारा सचेत करना। ३. आनयन = मर्यादा के बाहर से किसी वस्तु को मंगाना। ४. रूपाभिव्यक्ति = मर्यादा के काम करने वालों को अपना रूप दिखा कर सावधान करना। ५. पुद्गल क्षेप=कंकड़ पत्थर फेंक कर बाहर के लोगों को इशारा करना।

सामायिक शिक्षाव्रत का लक्षण

आसमयमुक्ति मुक्तं, पञ्चाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः, सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

अन्वयार्थ—(सामयिकाः) आगम के ज्ञाता पुरुष (अशेषभावेन) सम्पूर्ण रूप से सर्वत्र च) सब जगह मर्यादा के भीतर और बाहर भी (आसमयमुक्ति) किसी निश्चित समय तक (पञ्चाघानाम्) पांच पापों के (मुक्तम्) त्याग करने को (सामयिकं नाम) सामायिक (शंसन्ति) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—अशेषभाव = मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना से।

भावार्थ—मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदन से मर्यादा के भीतर और बाहर भी किसी निश्चित समय तक पांच पापों का त्याग करना सामायिक है ॥९७॥

सामायिक की विधि व समय।

मूर्धरुहमुष्टिवासो-बन्धं पर्यंकबन्धनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

अन्वयार्थ—(समयज्ञाः) आगम के ज्ञाता पुरुष (मूर्धरुह-

मुष्टिवासोबन्धम) केश, मुष्टि तथा वस्त्र के बांधने, (च) और (पर्यङ्कबन्धनम) पलाठी माड़ना (अपि) तथा (स्थानम) खड़े कायोत्सर्ग करना (वा और (उपवेशनम) बैठे बैठे कायोत्सर्ग करना आदि को समयम्) सामायिक की विधि अथवा आचार (जानन्ति) जानते हैं।

कठिन शब्दार्थ —* समय=विधि (आचार) काल, आदि।

भावार्थ—सामायिक के पहले चोटी में गांठ लगाना, बायें हाथ पर दाहिना हाथ रखकर पद्मासन लगाना, चादर वगैरह में गांठ लगाना, पलाठी माड़ कर बैठना, खड़े होकर कायोत्सर्ग करना, अथवा बैठकर सामायिक करना इत्यादि सामायिक की विधि है। अथवा समय का अर्थ काल भी होता है इसलिये उक्त श्लोक का यह अर्थ भी हो सकता है :—

"सामायिक के योग्य समय के ज्ञाता पुरुष, केश मुष्टि तथा वस्त्र के बांधने, पलाठी माड़ना, स्थान तथा उपवेशन को सामायिक का समय जानते हैं"।

भावार्थ—सामायिक के पहले केश मुष्टि या वस्त्र वगैरह में किसी प्रकार की गांठ बांध कर यह विचार कर लेना कि जब तक यह बंधन नहीं खोलूंगा तब तक के लिये मेरे पांचों पापों का त्याग है। इसी तरह जब तक मैं पलाठी आदि एक आसन से सुख पूर्वक बैठा रहूँगा तब तक के लिये पांचों पापों का त्याग है इस तरह सामायिक में समय की मर्यादा की जाती है। घड़ी घंटा आदि रूप से भी समय की मर्यादा की जा सकती है।

---

* 'समयः शपथाचार, कालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः।

सामायिक करने योग्य स्थान ।

एकान्ते सामयिकं, निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च ।
चैत्यालयेषु वापि च, परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

अन्वयार्थ—(निर्व्याक्षेपे) उपद्रव रहित (एकान्ते) एकान्त में (च) तथा (वनेषु) वनों में (वा) अथवा (वास्तुषु) घरों में (च) और (चैत्यालयेषु अपि) जिन मन्दिरों में भी (प्रसन्नधिया) प्रसन्नचित्त से (सामयिकम्) सामायिक (परिचेतव्यम्) बढ़ाना चाहिये ।

भावार्थ—बाधा रहित एकान्त स्थान में, वन में, घर में, मन्दिर में अथवा जहां चित्त स्थिर रह सकता हो वहां प्रसन्नचित्त से सामायिक का अभ्यास करना चाहिये ।

सामयिक का विशेष समय ।

व्यापारवैमनस्या-द्विनिवृत्यामन्तरात्मविनिवृत्या ।
सामयिकं बध्नीया-दुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

अन्वयार्थ—(व्यापारवैमनस्यात्) शरीरादि की चेष्टा और मन की आकुलता से (विनिवृत्त्यां 'सत्याम्') निवृत्ति होने पर (अन्तरात्मविनिवृत्या) मन के विकल्पों को दूर करके (उपवासे) उपवास के दिन (च) और (एकभुक्तेवा) एकाशन के दिन (सामायिकं) सामायिक (बध्नीयात्) करना चाहिये ।

भावार्थ—आरम्भ और परिग्रह वगैरह को छोड़कर तथा मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति को दूर कर उपवास अथवा एकाशन के दिन सामायिक करना चाहिये ।

सामायिक का उत्कृष्ट समय ६ घड़ी, मध्यम ४ घड़ी और जघन्य २ घड़ी है । २४ मिनट की एक घड़ी होती है ।

प्रतिदिन सामायिक करना चाहिये।

सामयिकं प्रतिदिवसं, यथावदप्यनलसेन चेतव्यम् ।
व्रतपञ्चकपरिपूरण-कारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

अन्वयार्थ—(व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणम्) पञ्च महाव्रतों की पूर्ति का कारण स्वरूप (सामयिकम्) सामायिक (प्रतिदिवसं) प्रतिदिन (अनलसेन) आलस्य रहित (अपि) और (अवधानयुक्तेन) एकाग्र चित्त से युक्त [सता] होते हुए (यथावत् [1] विधि पूर्वक (चेतव्यं) बढ़ाना चाहिये ॥१०१॥

भावार्थ—सामायिक से अहिंसा आदि व्रत पाले जाते हैं। इसलिये प्रतिदिन विधि पूर्वक सामायिक करना चाहिये ॥१०१॥

सामायिक का महत्त्व।

सामयिके सारम्भाः, परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्टमुनिरिव, गृही तदा याति यतिभावम् ॥१०२॥

---

१ सामायिक की विधि—पहले पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह कर खड़ा होकर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ दण्डवत कर, फिर उसी तरफ खड़ा होकर तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़ तीन आवर्त और एक नमस्कार करे। और फिर क्रम से दक्षिण आदि चारों दिशाओं की ओर तीन तीन आवर्त और एक एक नमस्कार करे। अनन्तर पूर्व या उत्तर की ओर मुँह कर खड़े होकर अथवा बैठ कर मन वचन काय को शुद्ध करके पांचों पापों का त्याग कर सामायिक पाठ पढ़े, किसी मन्त्र का जाप करे अथवा भगवान् की शान्तमुद्रा या चैतन्य मात्र शुद्ध आत्मस्वरूप का ध्यान करे। फिर अन्त में खड़ा हो पहले की तरह प्रत्येक दिशा में नौ नौ बार णमोकार पढ़ दण्डवत् करे।

अन्वयार्थ—(सामयिके) सामायिक में (सारम्भाः) आरम्भ सहित (सर्वे अपि) सभी (परिग्रहाः) परिग्रह (न एव) नहीं (भन्ति) होते हैं। [अत एव] इसलिये (तदा) उस समय (गृही) गृहस्थ (चेलोपसृष्टमुनिः इव) उपसर्ग से वस्त्र ओढ़े हुए मुनि की तरह (यतिभावं) मुनिपने को (याति) प्राप्त होता है।

कठिन शब्दार्थ—चेलोपसृष्टमुनि=ध्यान करते समय मुनि के ऊपर कपड़ा ओढ़ाना।

भावार्थ—जिस तरह उपसर्ग के समय वस्त्र ओढ़े हुए मुनिराज, उस वस्त्र में मोह नहीं रखते उसी तरह गृहस्थ मनुष्य भी सामायिक के समय वस्त्र सहित होता हुआ भी उन वस्त्रों में मोह नहीं रखता। मोह न होने से ही गृहस्थ पुरुष, सामायिक के समय में मुनि की तरह माना जाता है ॥१०२॥

सामायिक में परिग्रह सहन करने का उपदेश।

शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।

सामयिकं प्रतिपन्ना, अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

अन्वयार्थ—(सामयिकं) सामायिक को (प्रतिपन्नाः) प्राप्त हुए पुरुष (मौनधराः) मौनधारी (च) और (अचलयोगाः 'सन्त') निश्चल योग होते हुए (शीतोष्णदंशमशकपरीषहं) शीत, उष्ण, डाँस मच्छर आदि की परीषह तथा (उपसर्गं) उपसर्ग को (अधिकुर्वीरन्) सहन करें।

कठिन शब्दार्थ—परीषह=कर्मों की निर्जरा करने के लिये मुनिराज जिन दुःखों को सहते हैं, वे क्षुधा तृषा आदि बाईस होते हैं। उपसर्ग=द्वेष आदि के कारण कष्ट दिया जाना अथवा उपद्रव किया जाना।

भावार्थ—सामायिक के समय शान्त भावों से सब प्रकार की परीषह और उपसर्ग सहन करना चाहिये ॥१०३॥

सामायिक के समय क्या चिन्तवन करना चाहिये ?

अशरणमशुभमनित्यं, दुःखमनात्मानमावसामि भवम् ।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

अन्वयार्थ—[अहं] मैं (अशरणं) शरण रहित (अशुभं) अशुभ (अनित्यं) अनित्य (दुःखं) दुःख और (अनात्मानं) पर रूप (भवं) संसार में (आवसामि) निवास कर रहा हूँ । 'किन्तु' (मोक्षः) मोक्ष (तद्विपरीतात्मा) उससे उल्टा है । (इति) ऐसा (सामयिके) सामायिक के समय (ध्यायन्तु) ध्यान करना चाहिये ॥१०४॥

भावार्थ—संसार, अशरण और अशुभ रूप आदि है और मोक्ष, शरण रूप तथा शुभ रूप आदि है । इसलिये संसार में सच्चा सुख नहीं है, उस सुख के लिये मोक्ष पाने का प्रयत्न करना चाहिये । सामायिक में ऐसा विचार किया जाता है ।

सामायिक के अतीचार

वाक्कायमानसानां, दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे ।
सामयिकस्यातिगमाः, व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥ १०५ ॥

अन्वयार्थ—(वाक्कायमानसानाम् दुःप्रणिधानानि) वाग्दुः-प्रणिधान, कायदुःप्रणिधान, मानस दुःप्रणिधान, (अनादरास्मरणे) अनादर और अस्मरण [एते] ये (पञ्च) पांच (भावेन) परमार्थ से (सामयिकस्य) सामायिक के (अतिगमाः) अतिचार (व्यज्यन्ते) प्रकट किये जाते हैं ।

कठिन शब्दार्थ—१ वाग्दुःप्रणिधान = शास्त्र विरुद्ध अशुद्ध पाठ पढ़ना

२. कायदुःप्रणिधान = शरीर को चञ्चल करना । ३. मानस दुःप्रणिधान = मन से दुष्ट परिणाम करना (मन को स्थिर नहीं करना) ४. अनादर = सामायिक की विधि का आदर नहीं करना । ५. अस्मरण = सामायिक पाठ या मन्त्र वगैरह का भूल जाना ।

भावार्थ—इन पांचों अतीचारों को छोड़ कर यथाशक्ति सामायिक अवश्य करना चाहिये ॥ १०५ ॥

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का वर्णन.

पर्वण्यष्टम्यां च, ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु ।
चतुरभ्यवहार्याणां, प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥ १०६ ॥

अन्वयार्थ—(तु) और (पर्वणि) चतुर्दशी (च) तथा (अष्टम्याम्) अष्टमी के दिन (सदा) सदा (इच्छाभिः) व्रत विधान की इच्छा से (चतुरभ्यवहार्याणाम्) चार तरह के भोजनों के (प्रत्याख्यानं) त्याग करने को (प्रोषधोपवासः) प्रोषधोपवास (ज्ञातव्यः) जानना चाहिये ।

कठिन शब्दार्थ—चतुरभ्यवहार्य = चार तरह का आहार, १. अशन (भात दाल आदिक) २. पान (पीने योग्य दूध छाछ आदि) ३. खाद्य (लड्डू आदि) और लेह्य (रबड़ी आदि) ।

भावार्थ—प्रत्येक चतुर्दशी और अष्टमी के दिन धर्म भाव से, चारों प्रकार के आहार का त्याग करना प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत है ॥ १०६ ॥

प्रोषधोपवास के दिन क्या क्या त्याग करना चाहिये ?

पञ्चानां पापाना-मलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् ।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात् ॥ १०७ ॥

अन्वयार्थ—(उपवासे) उपवास के दिन (पञ्चानां पापानां)

पाचों पापों का, (अलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणां) शृङ्गार, आरम्भ, गन्ध, पुष्प आदि का तथा (स्नानाञ्जननस्यानां) स्नान, अञ्जन और नस्य-हुलास वगैरह का (परिहृतिं) त्याग (कुर्यात्) करना चाहिये।

भावार्थ—उपवास के दिन पांच पापों का, पाँचों इन्द्रियों के विषयों का तथा कषायों का अवश्य त्याग करना चाहिये।

उपवास के दिन का कर्तव्य.

धर्मामृतं सतृष्णः, श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान् ।
ज्ञानध्यानपरो वा, भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थ—(उपवसन्) उपवास करने वाला व्रती (अतन्द्रालुः) आलस्य रहित और (सतृष्णः) अत्यन्त उत्कण्ठित [सन्] होता हुआ (श्रवणाभ्यां) कानों से (धर्मामृतं) धर्म रूपी अमृत को (पिबतु) पीवे (वा) तथा (अन्यान्) दूसरों को (पाययेत्) पिलावे (वा) अथवा (ज्ञानध्यानपरः) ज्ञान ध्यान में लीन (भवतु) होवे।

भावार्थ—उपवास के दिन व्यर्थ समय न खोकर उत्साह से धर्मग्रन्थों के पढ़ने और सुनाने में मन लगावे ॥ १०८ ॥

प्रोषध और उपवास.

चतुराहारविसर्जन-मुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः ।
स प्रोषधोपवासो, यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥ १०९ ॥

अन्वयार्थ—(चतुराहारविसर्जनं) चारों प्रकार के आहार का त्याग करना (उपवासः) उपवास; और (सकृद्भुक्तिः) एक बार भोजन करना (प्रोषधः) प्रोषध [अस्ति] है। 'तथा' (यत्) जो एकाशन और दूसरे दिन' (उपोष्य) उपवास करके पारणा

के दिन (आरम्भं) एकाशन (आचरति) करता है (सः) वह (प्रोषधोपवासः) प्रोषधोपवास [कथ्यते] कहा जाता है ।

भावार्थ—अन्न, पान, खाद्य और लेह्य इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है तथा एक बार भोजन करना प्रोषध है । पहले और आगे के दिन एकाशन कर उपवास करना प्रोषधोपवास है ॥१०६॥

प्रोषधोपवास के पांच अतिचार

ग्रहणविसर्गास्तरणा-न्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलंघनपंचकं तदिदम् ॥११०॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (अदृष्टमृष्टानि ग्रहणविसर्गास्तरणानि) अदृष्टमृष्टग्रहण, अदृष्टमृष्टविसर्ग, अदृष्टमृष्टास्तरण तथा (अनादरास्मरणे) अनादर और अस्मरण है (तत्) सो (इदम्) यह (प्रोषधोपवासव्यतिलंघनपंचकम्) प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का अतिचार पंचक [अस्ति] है ।

कठिन शब्दार्थ—१. अदृष्टमृष्टग्रहण = भूख से पीड़ित होकर बिना देखी शोधी हुई वस्तुओं को उठाना । २. अदृष्टमृष्टविसर्ग = बिना देखी शोधी हुई भूमि पर मल मूत्र आदि करना । ३. अदृष्टमृष्टास्तरण = बिना देखी शोधी हुई भूमि पर आसन वगैरह बिछाना । ४. अनादर = आवश्यक कार्मों में आदर न होना । ५. अस्मरण = विधि को भूल जाना ।११०।

भावार्थ—जीव जन्तुओं की रक्षा के लिये प्रमाद और आकुलता दूर कर देख शोध कर पीछी आदि उपकरण उठाना रखना और मलमूत्र आदि का त्याग करना चाहिये ।

वैयावृत्यशिक्षाव्रत का वर्णन

दानं वैयावृत्यं, धर्माय तपोधनाय गुणनिधये ।
अनपेक्षितोपचारो-पक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

अन्वयार्थ—(गुणनिधये) सम्यग्दर्शन आदि गुणों के भण्डार (अगृहाय) गृह रहित (तपोधनाय) तपस्वियों के लिये (विभवेन) विधि द्रव्य आदि सम्पदा के द्वारा (धर्माय) धर्म के अर्थ (अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्) प्रत्युपकार की इच्छा रहित (दानम्) दान देना (वैयावृत्यम) वैयावृत्य [उच्यते] कहा जाता है।

कठिन शब्दार्थ—उपचार = प्रतिदान (बदले का दान)। उपक्रिया = मन्त्र तन्त्र आदि के द्वारा बदले का उपकार ;

भावार्थ—प्रत्युपकार की वांछा से रहित केवल धर्म बुद्धि से गृहत्यागी मुनिराज के लिये, आहार, कमण्डलु, पीछी, शास्त्र आदि का दान देना वैयावृत्य शिक्षाव्रत है ॥१११॥

वैयावृत्य का दूसरा अर्थ.

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात् ।
वैयावृत्यं यावा-नुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥ ११२ ॥

अन्वयार्थ—(गुणरागात्) गुणानुराग से (संयमिनाम्) संयमीजनों का (व्यापत्तिव्यपनोदः) खेद दूर करना, (पदयोः) चरणों का (संवाहनम्) दाबना (च) और (अन्यः अपि) अन्य भी (यावान्) जितना (उपग्रहः) उपकार करना है [तावान्] उतना सब (वैयावृत्यम्) वैयावृत्य [कथ्यते] कहा जाता है।

भावार्थ—व्रती पुरुषों के गुणों का आदर करते हुये उनके कष्टों को दूर करना वैयावृत्य है ॥ ११२ ॥

दान का लक्षण.

नवपुण्यैःप्रतिपत्तिः, सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणा-मार्याणामिष्यते दानम् ॥ ११३ ॥

अन्वयार्थ—(सप्तगुणसमाहितेन) सप्तगुण सहित (शुद्धेन) वर्णसंकर आदि दोष रहित [श्रावकेन] श्रावक के द्वारा (अप-सूनारम्भाणाम्) ‡पंचसूना के आरम्भ से रहित (आर्याणाम्) मुनि आदिक श्रेष्ठ पुरुषों का (नवपुण्यैः) * नवधाभक्ति से (प्रतिपत्तिः) आदर सत्कार करना (दानम्) दान (इष्यते) माना जाता है।

भावार्थ—श्रावक को चाहिये कि वह नवधा भक्ति पूर्वक †दाता के सात गुणों को धारण करते हुये उत्तम पात्रों को आहार आदि का दान देवे ॥११३॥

दान का फल।

गृहकर्मणापि निचितं, कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा, रुधिरमलं धावते वारि ॥ ११४ ॥

‡खंडनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भःप्रमार्जनी।
पंच सूना गृहस्थस्य तेन मोक्षं न गच्छति ॥

१ उखली, २ चक्की, ३ चूल्हा ४ पानी के घट और ५ प्रमार्जन-बुहारी ये पांच पंचसूना कहलाते हैं।

* पडिगह मुच्चट्ठाणं, पादोदयमच्चणं च पणमं च।
मणवयणकायसुद्धी, एसणसुद्धी य नवविहं पुण्णं ॥

१. पडिगाहन २. उच्चस्थान ३. पादोदक ४. अर्चा, ५. प्रणाम, ६. मन शुद्धि, ७. वचन शुद्धि, ८. काय शुद्धि और ९ भोजनशुद्धि ये ९ पुण्य हैं।

† श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमा सत्यम्।
यस्यैते सप्तगुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति ॥

१ श्रद्धा २ सन्तोष ३ भक्ति ४ विज्ञान ५ लोभ का अभाव ६ क्षमा ७ सत्य ये सात गुण जिसमें हों वह दाता प्रशंसनीय है।

अन्वयार्थ—(अलम्) जैसे (वारि) जल (रुधिरम्) खून को (धावते) धो देता है [तथा] वैसेही (गृहविमुक्तानाम्) गृह रहित (अतिथीनाम्) मुनियों का दिया हुआ (प्रतिपूजा अपि) दान भी (गृहकर्मणा) घर के कार्यों से (निचितं) संचित (कर्म) ज्ञानावरणादि कर्मों को (खलु) निश्चय से (विमार्ष्टि) दूर कर देता है।

भावार्थ—उत्तम मुनियों को दान देने से गृहस्थी के होने वाले पाप छूट जाते हैं ॥११४॥

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं, स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥ ११५ ॥

अन्वयार्थ—(तपोनिधिषु) तपस्वी मुनियों को (प्रणतेः) प्रणाम करने से (उच्चैर्गोत्रम्) उच्च गोत्र, (दानात्) दान देने से (भोगः) भोग, (उपासनात्) नवधा भक्ति करने से (पूजा) प्रतिष्ठा, (भक्तेः) भक्ति करने से (सुन्दररूपम्) सुन्दर रूप और (स्तवनात्) स्तुति करने से (कीर्तिः) कीर्ति [भवति] होती है।

कठिन शब्दार्थ—भक्ति=पूज्य पुरुषों के गुणों में विशेष प्रीति। स्तुति=गुणों का वर्णन करना।

भावार्थ—मुनियों को प्रणाम करने से उच्च कुल, दान देने से पाँचों इन्द्रियों के भोग, व उपभोग, नवधा भक्ति करने से प्रतिष्ठा, भक्ति से सुन्दर रूप और उनकी स्तुति करने से यश मिलता है ॥११५॥

क्षितिगतमिव वटबीजं, पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं, बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥

अन्वयार्थ—(पात्रगतम्) पात्र में गया हुआ (अल्पम् अपि) थोड़ा भी (दानम्) दान (काले) समय पर (शरीरभृताम्) जीवों के (क्षितिगतम्) पृथ्वी में प्राप्त हुए (वटबीजम) बड़ के बीज की (छायाविभवम् इव) छाया के विभव की तरह (इष्टम) मनोवांछित (बहुफलम्) बहुत फल को (फलति) फलता है ।

कठिन शब्दार्थ—पात्र=जिसके लिये दान दिया जावे । पात्र के ३ भेद है—१ उत्तम पात्र, (मुनि) २ मध्यम पात्र (श्रावक) ३ जघन्य पात्र (अविरत सम्यग्दृष्टि) ।

भावार्थ—जिस तरह उत्तम जमीन में बोया गया बड़ का छोटा सा बीज, समय पाकर बहुत बड़ा वृक्ष हो जाता है उसी तरह उत्तम पात्र को दान देने से अनेक मनवांछित फल मिल जाते हैं ॥११६॥

दान के भेद

आहारौषधयोर-प्युपकरणावासयोश्च दानेन ।
वैयावृत्य ब्रुवंत, चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११७॥

अन्वयार्थ—(चतुरस्राः) पण्डित जन (आहारौषधयोः) आहार और औषध के (अपि) तथा (उपकरणावासयोः) शास्त्र आदि ज्ञान के उपकरण और स्थान के (दानेन) देने से (वैयावृत्त्यम्) वैयावृत्त्य को (चतुरात्मत्वेन) चार तरह का (ब्रुवंते) कहते हैं ।

भावार्थ—दान के चार भेद हैं १ आहार दान (पात्र के लिये विधि पूर्वक भोजन देना) २ औषधिदान (रोगियों के लिये औषधि देना) ३ ज्ञानदान (पढ़ाना, शास्त्र वगैरह देना)

और ४ अभयदान (ठहरने के लिये कुटी वगैरह बनवाना अथवा जीवों की रक्षा करना) ॥११७॥

दान के फल पाने वालों के नाम।

श्रीषेणवृषभसेने, कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टान्ताः।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

अन्वयार्थ—(श्रीषेणवृषभसेने) श्रीषेण राजा, वृषभ सेना सेठ की पुत्री (कौण्डेशः) कौण्डेश (च) और (शूकरः) शूकर (एते 'चत्वारः') ये चार (चतुर्विकल्पस्य) चार भेद वाले (वैयावृत्यस्य) वैयावृत्य नामक शिक्षाव्रत के (दृष्टान्ताः) दृष्टान्त (मन्तव्याः) मानना चाहिये।

भावार्थ—आहारदान में श्रीषेण राजा, औषधदान में वृषभसेना, ज्ञानदान में कौण्डेश और अभयदान में एक शूकर प्रसिद्ध हुआ है ॥११८॥

अर्हन्त भगवान की पूजा करने का उपदेश।

देवाधिदेवचरणे, परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि, परिचिनुयादादृतो नित्यम् ।११६।

अन्वयार्थ—(कामदुहि) इच्छित फल देने वाले और (कामदाहिनि) कामदेव को भस्म करने वाले (देवाधिचरणे) जिनेन्द्र देव के चरणों में (नित्यम्) हमेशा (आदृतः) आदर पूर्वक (सर्वदुःखनिर्हरणम्) सब दुःखों को हरने वाली (परिचरणम्) पूजा (परिचिनुयात्) करना चाहिये।

भावार्थ—सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाले और काम के विकारों को दूर करने वाले जिनेन्द्र भगवान् की हमेशा आदर पूर्वक पूजा करना चाहिये ॥ ११६ ॥

पूजा की महिमा को प्रकट करने वाला दृष्टान्त.

अर्हच्चरणसपर्या–महानुभावं महात्मनामवदत् ।
भेकः प्रमोदमत्तः, कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥ १२० ॥

अन्वयार्थ—(प्रमोदमत्तः) हर्ष से फूले हुये (भेकः) मेंढक ने (राजगृहे) राजगृही नगरी में (महात्मनाम्) महापुरुषों के [पुरस्तात्] आगे (एकेन कुसुमेन) एक फूल के द्वारा (अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावम्) अरहन्त देव के चरणों की पूजा के महत्व को (अवदत्) प्रकट किया।

भावार्थ—मेंढक के समान भगवान् की भक्ति पूर्वक पूजा करने से स्वर्ग आदि सभी पद मिल जाते हैं।

वैयावृत्य के अतिचार.

हरितपिधाननिधाने, ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि ।
वैयावृत्यस्यैते, व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥ १२१ ॥

अन्वयार्थ — (हरितपिधाननिधाने) हरित पिधान, हरित निधान (अनादरास्मरणमत्सरत्वानि) अनादर, अस्मरण और मत्सरत्व (एते पञ्च) ये पांच (हि) निश्चय से (वैयावृत्यस्य) ‡ वैयावृत्य के (व्यतिक्रमाः) अतिचार (कथ्यन्ते) कहे जाते हैं।

कठिन शब्दार्थ —१ हरित पिधान = देने योग्य आहार को हरे पत्तों से ढकना। २. हरित निधान = देने योग्य आहार को हरे पत्तों पर रखना। ३. अनादर = आदर से नहीं देना। ४. अस्मरण = दान की विधि वगैरह भूल जाना। ५. मत्सरत्व = दूसरे दातारों की प्रशंसा को न सहन या (ईर्ष्याभाव से आहार देना।

इति स्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचिते रत्नकरण्डश्रावकाचारे
पञ्चमः परिच्छेदः ॥

---

‡ दूसरे ग्रन्थों में इस व्रत का नाम ‘अतिथिसंविभागव्रत’ कहा गया है।

अन्तर प्रदर्शन.

दिग्व्रत-देशावकाशिकव्रत—दिग्व्रत में आने जाने की सीमा जीवन पर्यन्त के लिये की जाती है पर देशावकाशिकव्रत में समय की मर्यादा लेकर की जाती है।

देशावकाशिक—सामायिक—देशावकाशिकव्रत में मर्यादा के बाहर पांच पापों का त्याग होता है पर सामायिक में मर्यादा के बाहर और भीतर भी होता है।

प्रोषध—उपवास—प्रोषध का अर्थ एकाशन (एक बार भोजन) करना है और उपवास का अर्थ विषय कषाय और आरम्भ आदि का त्याग कर चारों प्रकार के आहारों का छोड़ना है।

प्रश्नावली.

(१) शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?

(२) शिक्षाव्रतों के बिना अणुव्रत धारण किया जा सकता है या नहीं ?

(३) सामायिक की विधि क्या है ? सामायिक करते समय क्या सोचना चाहिये ?

(४) दिग्व्रत और देशव्रत में क्या अन्तर है ?

(५) सोहन ने एक नग्न मनुष्य को सच्चा मुनि समझ कर भक्ति पूर्वक आहारदान दिया। बाद में वह झूठा मुनि निकला। बतलाइये, सोहन दान के पुण्य का भागी होगा या नहीं ?

(६) अतिथिसंविभागव्रत और वैयावृत्य इन दोनों नामों से तुम्हें अधिक पसन्द कौन है ?

छठवां परिच्छेद।

सल्लेखना का वर्णन

सल्लेखना का स्वरूप

आर्याछन्द

उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसिरुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचन–माहुःसल्लेखनामार्याः ॥१२२॥

अन्वयार्थ—(आर्याः) गणधरादिक उत्तम पुरुष (निःप्रतीकारे) उपाय रहित (उपसर्गे) उपसर्ग (दुर्भिक्षे) दुष्काल (जरसि) बुढ़ापा (च) और (रुजायाम्) रोग के 'आने पर' (धर्माय) धर्म के अर्थ (तनुविमोचनम्) शरीर के छोड़ने को (सल्लेखनाम्) सल्लेखना (आहुः) कहते हैं।

कठिन शब्दार्थ—सल्लेखना = कषायों के साथ शरीर को भी कृश करना।

भावार्थ—उपाय रहित उपसर्ग, दुष्काल, बुढ़ापा तथा रोग वगैरह के आने पर रत्नत्रयस्वरूप, धर्म का उत्तम रीति से पालन करने के लिये, शरीर छोड़ना सल्लेखना है। इसी का दूसरा नाम समाधिमरण है ॥ १२२ ॥

सल्लेखना की आवश्यकता।

अन्तक्रियाधिकरणं, तपःफलं सकलदर्शिनःस्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं, समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥ १२३ ॥

अन्वयार्थ—[यस्मात्] जिस कारण से (सकलदर्शिनः) सर्वज्ञदेव (अन्तक्रियाधिकरणम्) सन्यास धारण करने रूप (तपःफलम्) तप के फल की (स्तुवते) प्रशंसा करते हैं (तस्मात्) उस कारण से (यावद्विभवम्) शक्ति अनुसार (समा-

धिमरणे) संन्यास धारण करने में (प्रयतितव्यम्) प्रयत्न करना चाहिये।

भावार्थ—आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक मरण होना ही तप का फल है, इसलिये शक्ति के अनुसार समाधिमरण साधने का प्रयत्न करना चाहिये ॥१२३॥

सल्लेखना की विधि।

स्नेहं वैरं सङ्गं, परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च, क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥

अन्वयार्थ—(स्नेहम) राग (वैरम्) द्वेष (सङ्गम्) सम्बन्ध (च) और (परिग्रहम्) परिग्रह को (अपहाय) छोड़ कर (शुद्ध-मनाः) शुद्धचित्त [सन्] होता हुआ (स्वजनम्) अपने कुटुम्ब को (च) तथा (परिजनम अपि) अन्यजनों को भी (प्रियैः वचनैः) प्रियवचनों द्वारा (क्षान्त्वा) क्षमा कर (क्षमयेत्) आप भी क्षमा करावे।

भावार्थ—समाधिमरण करने वाला व्रती अपने कुटुम्बी-जन तथा दूसरे लोगों पर क्षमा करे और उनसे अपने ऊपर भी क्षमा करावे ॥ १२४ ॥

आलोच्य सर्वमेनः, कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रत-मामरणस्थायि निःशेषम् ॥ १२५ ॥

अन्वयार्थ—(कृतकारितम्) कृतकारित (च) और (अनु-मतम्) अनुमोदना से किये हुए (सर्वम् एनः) सब पापों की (निर्व्याजम्) दोष रहित (आलोच्य) आलोचना करके (आमरण-स्थायि) मरण पर्यन्त रहने वाले (निःशेषम्) सम्पूर्ण (महाव्रतम्) महाव्रत को (आरोपयेत्) धारण करे।

कठिन शब्दार्थ—आलोचना = किये हुए दोषों को गुरु के सामने प्रकट करना ।

भावार्थ—कृतकारित और अनुमोदना से किये गये समस्त पापों की *निर्दोष आलोचना करने से चित्त को शुद्ध करे । और जब चित्त शुद्ध होजावे तब जीवन पर्यन्त के लिये पंच महाव्रत धारण करे ॥ १२५ ॥

शोकं भयमवसादं, क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा ।
सत्वोत्साहमुदीर्य च, मनःप्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥

अन्वयार्थ—(शोकम्) शोक (भयम्) भय (अवसादं) विषाद (क्लेद) स्नेह (कालुष्यं) द्वेष (अपि) और (अरतिं) अरति को (हित्वा) छोड़ कर (च) तथा (सत्त्वोत्साहं) शक्ति और उत्साह को (उदीर्य) प्रकट कर (अमृतैः) अमृत तुल्य (श्रुतैः) शास्त्रों के द्वारा (मनः) मन को (प्रसाद्यम) प्रसन्न करे ।

भावार्थ—संल्लेखनाधारी पुरुष, शोक आदि न कर वैराग्य बढ़ाने वाले धर्म को सुने ॥ १२६ ॥

आहारं परिहाप्य, क्रमशःस्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा, खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥ १२७ ॥

अन्वयार्थ—(क्रमशः) क्रम से (आहारं) आहार को (परिहाप्य) छोड़कर (स्निग्धं पान) दूध या छाछ को (विवर्द्धयेत्)

* आकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुम च ।
छन्नं सद्दाउलयं, बहुजणमव्वत्त तस्सेवी ।

१. आकम्पित २. अनुमापित ३. दृष्ट ४. बादर ५. सूक्ष्म ६ प्रच्छन्न ७. शब्दाकुलित ८. बहुजन ९. अव्यक्त और १० तत्सेवी—ये दश आलोचना के दोष हैं ।

बढ़ावे। (च) फिर (स्निग्धं) दूध आदि को (हापयित्वा) छोड़कर (खरपानं) गर्म जल को (पूरयेत्) बढ़ावे ॥ १२७ ॥

खरपानहापनामपि, कृत्वाकृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमना-स्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥ १२८ ॥

अन्वयार्थ—तत्पश्चात् (खरपानहापनां अपि) उष्ण जल-पान का त्याग भी (कृत्वा) करके (अपि) फिर (शक्त्या) शक्ति से (उपवासं कृत्वा) उपवास करके (सर्वयत्नेन) सब प्रकार के प्रयत्नों से (पञ्चनमस्कारमनाः 'सन्') पञ्च नमस्कारमन्त्र को मन में धारण करता हुआ (तनुम) शरीर को (त्यजेत्) छोड़े।

भावार्थ—फिर गर्म पानी को भी छोड़ कर उपवास करे तथा अन्त में 'णमोकार मन्त्र' का ध्यान करता हुआ सावधानी से प्राण छोड़े ॥ १२८ ॥

सल्लेखना के अतिचार।

जीवितमरणाशंसे, भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः।
सल्लेखनातिचाराः, पञ्च जिनेन्द्रैःसमादिष्टाः ॥ १२९ ॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्रैः) जिनेन्द्र देव के द्वारा (जीवित-मरणाशंसे) जीविताशंसा, मरणाशंसा (भयमित्रस्मृतिनिदान-नामानः) भय, मित्रस्मृति और निदान नाम वाले (पञ्च) पांच (सल्लेखनातिचाराः) सल्लेखना के अतिचार (समादिष्टाः) कहे गये हैं।

कठिन शब्दार्थ—१ जीविताशंसा = जीने की अभिलाषा २. मरणाशंसा = अधिक तकलीफ होने से मरने की इच्छा करना। ३. भय-परलोक का भय। ४. मित्रस्मृति = परिचित मित्रों को याद करना ५. निदान = परलोक में स्त्री भोग आदि की इच्छा करना।

भावार्थ—इस प्रकार पाँचों अतिचारों को छोड़कर सल्लेखना करनी चाहिये।

सल्लेखना धारण करने का फल

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा, सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥ १३० ॥

अन्वयार्थ—(पीतधर्मा) रत्नत्रय रूप धर्म का पालन करने वाला सल्लेखना धारी पुरुष (सर्वैः दुःखैः) सब दुःखों से (अनालीढः) रहित [सन्] होता हुआ (निस्तीरम्) तीर रहित (दुस्तरम्) दुस्तर (सुखाम्बुनिधिम्) सुख के समुद्र स्वरूप (निःश्रेयसम्) निर्वाण तथा (अभ्युदयम्) इन्द्र आदि पद के सुख का (निःपिबति) अनुभव करता है।

भावार्थ—समाधिमरण करने से स्वर्ग और मोक्ष पद मिलते हैं।

निःश्रेयस का स्वरूप

जन्मजरामयमरणैः, शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं, निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥ १३१ ॥

अन्वयार्थ—(नित्यम्) नित्य तथा (जन्मजरामयमरणैः) जन्म, बुढ़ापा, रोग, मरण (शोकैः) शोक (दुःखैः) दुःख (च) और (भयैः) भय से (परिमुक्तम्) रहित (शुद्धसुखम्) शुद्ध सुख वाला (निर्वाणम्) मोक्ष (निःश्रेयसम्) निःश्रेयस (इष्यते) कहलाता है।

भावार्थ—जन्म जरा आदि दोषों से रहित अविनाशी सुख वाला मोक्ष ही निःश्रेयस कहलाता है। ॥१३१॥

निःश्रेयस मोक्ष में कैसे पुरुष रहते हैं ?

विद्यादर्शनशक्ति-स्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।

निरतिशया निरवधयो, निःश्रेयसमावसन्ति सुखम्॥१३२॥

अन्वयार्थ—(निरतिशयाः) हीनाधिकता रहित (निरवधयः) मर्यादा रहित तथा (विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः) अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, परमोदासीनता, अनन्त सुख, तृप्ति और शुद्धि से युक्त सिद्धपरमेष्ठी (सुखं निःश्रेयसम्) सुख रूप मोक्ष में (आवसन्ति) चिरकाल तक निवास करते हैं।

भावार्थ—अनन्त ज्ञान आदि गुणों को धारण करने वाले सिद्ध भगवान अनन्त काल तक सुख से मोक्ष में विराजते हैं।

काले कल्पशतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या ।

उत्पातोऽपि यदि स्यात्, त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि (त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः) तीन लोक के क्षोभ करने में समर्थ (उत्पातः अपि) उपद्रव भी (स्यात्) होवे [तदपि] तोभी (च) और (कल्पशते) सैकड़ों कल्प प्रमाण (काले) काल के (गते अपि) व्यतीत हो जाने पर भी (शिवानाम्) मुक्त जीवों के (विक्रिया) विकार (न लक्ष्या) नहीं होता है।

कठिन शब्दार्थ—कल्प=बीस कोड़ा कोड़ी सागर वर्षों का एक कल्पकाल होता है। कल्पकाल के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दो भेद हैं।

भावार्थ—सिद्ध जीवों के सब कर्मों का नाश हो जाने के कारण उनमें किसी प्रकार का कभी विकार नहीं हो सकता।१३३।

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते ।

निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥१३४॥

अन्वयार्थ—(निःश्रेयसम्) मोक्ष को (अधिपन्नाः) प्राप्त हुए पुरुष (निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः) कीट कालिमा आदि रहित कान्ति से युक्त सुवर्ण की तरह देदीप्यमान आत्मा वाले [सन्तः] होते हुये (त्रैलोक्यशिखा-मणिश्रियम्) तीन लोक के चूड़ामणि की शोभा को (दधते) धारण करते हैं।

भावार्थ—कर्म रहित होने के कारण सिद्धजीव किट्ट कालिमा आदि रहित सुवर्ण के समान प्रकाशमान होते हैं और वे तीन लोक के ऊपर कलश के समान शोभा पाते हैं। ॥१३४॥

सल्लेखना के अभ्युदय रूप फल का वर्णन

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः ।

अतिशयितभुवनमद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्मः ।१३५।

अन्वयार्थ—(सद्धर्मः) सल्लेखना से बँधा हुआ पुण्य कर्म (बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः) बल कुटुम्ब तथा इच्छित भोगों से अधिक (पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः) प्रतिष्ठा धन और आज्ञा रूप ऐश्वर्य के द्वारा (अतिशयिभुवनम्) तीनों लोकों में अत्यन्त उत्कृष्ट (अद्भुतम् अभ्युदयम्) आश्चर्यकारी स्वर्गादि फल को (फलति) फलता है।

भावार्थ—समाधिमरण से, संसार के ऊँचे से ऊँचे स्वर्ग आदि के सभी सुख प्राप्त होते हैं। ॥१३५॥

इति श्री स्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचिते रत्नकरण्डश्रावकाचारे

षष्ठः परिच्छेदः ।

प्रश्नावली

(१) सल्लेखना कब धारण करना चाहिये ?

(२) सल्लेखना से आत्महत्या पाप क्यों नहीं लगता ?

(३) सल्लेखना नहीं करने से क्या हानि है ?

(४) सल्लेखना कौन पुरुष कर सकता है ?

(५) सल्लेखना की विधि क्या है ?

(६) सल्लेखना के अतिचार गिनाओ ?

(७) मोक्ष का क्या स्वरूप है ?

(८) मिथ्यादृष्टि के सल्लेखनामरण हो सकता या नहीं ?

सप्तम परिच्छेद

प्रतिमाओं का वर्णन

प्रतिमा के भेद व स्वरूप

आर्या छन्द

श्रावकपदानि देवै-रेकादश देशितानि येषु खलु ।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह, सन्तिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥

अन्वयार्थ—(देवैः) जिनेन्द्र देव के द्वारा (श्रावकपदानि) श्रावक की प्रतिमाएं (एकादश) ग्यारह (देशितानि) कही गई हैं (येषु) जिनमें (खलु) निश्चय से (स्वगुणाः) अपने गुण, (पूर्वगुणैः सह) पहिले के समस्त गुणों के साथ (क्रमविवृद्धाः) क्रम से बढ़ते हुए (सन्तिष्ठन्ते) रहते हैं ।

कठिन शब्दार्थ—श्रावक=अणुव्रत (देशत्यागित्र) धारण करने वाला ।

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवान ने श्रावक के ग्यारह भेद बताये हैं इन्हीं को प्रतिमा या पद कहते हैं । आगे की प्रतिमाओं

में पहले की प्रतिमाओं की क्रिया अवश्य पाली जाती है । ग्यारह प्रतिमाओं के नाम ये हैं—१ दर्शन प्रतिमा २ व्रत प्रतिमा ३ सामायिक प्रतिमा ४ प्रोषध प्रतिमा ५ सचित्त त्याग प्रतिमा ६ रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा ७ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ८ आरम्भ त्यागप्रतिमा ९ परिग्रह त्याग प्रतिमा १० अनुमतित्यागप्रतिमा और ११ उद्दिष्टत्याग प्रतिमा ॥१३६॥

१. दर्शनिक श्रावक (दर्शन प्रतिमा धारी)

सम्यग्दर्शनशुद्धः, संसारशरीरभोगनिर्विरणाः ।
पञ्चगुरुचरणशरणो, दर्शनिकस्तत्वपथगृह्यः ॥१३७॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शनशुद्धः) सम्यग्दर्शन से शुद्ध, (संसारशरीरभोगनिर्विरणाः) संसार, शरीर व भोगों से विरक्त (पञ्चगुरुचरणशरणः) पञ्चपरमेष्ठियों के चरण ही हैं शरण जिसका ऐसा तथा (तत्वपथगृह्यः) सत्यार्थ मार्ग का ग्रहण करने वाला पुरुष (दर्शनिकः) दर्शन प्रतिमा धारी श्रावक [उच्यते] कहा जाता है ।

कठिन शब्दार्थ—पञ्चगुरु=अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ।

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हो, संसार शरीर व विषय भोगों से उदासीन हो, पञ्चपरमेष्ठी का श्रद्धानी हो तथा अष्टमूल गुणों का धारक हो वह दर्शनिक श्रावक कहलाता है ।

२. व्रतप्रतिमाधारी ।

निरतिक्रमणमणुव्रत—पञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो, योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (निःशल्यः 'सन्') शल्य रहित होता हुआ (निरतिक्रमणां) अतिचार रहित (अणुव्रतपञ्चकं)

पांच अणुव्रत (अपि) तथा (शीलसप्तकं च अपि) सात शील व्रतों को भी (धारयते) धारण करता है (असौ) वह (व्रतिनां) व्रतधारियों में (व्रतिकः) व्रत प्रतिमाधारी (मतः) माना गया है।

कठिन शब्दार्थ—शल्य = जो कांटे की तरह हृदय में चुभता रहे। इसके तीन भेद हैं १. माया २. मिथ्यात्व और ३. निदान। सात शील = ४. शिक्षाव्रत और ३ गुणव्रत ये ७ शीलव्रत कहलाते हैं।

भावार्थ—जो शल्य रहित होकर अतिचार रहित पांच अणुव्रत और 'तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत' इन सात शीलव्रतों को धारण करता है वह व्रत प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है ॥ १३८ ॥

३. सामायिक प्रतिमाधारी।

चतुरावर्त्तत्रितय-श्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।

सामयिको द्विनिषद्य-स्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ।१३९।

अन्वयार्थ—(चतुरावर्त्तत्रितयः) चारों दिशाओं में तीन तीन आवर्त करने वाला (चतुःप्रणामः) चारों दिशाओं में एक एक प्रणाम करने वाला, (स्थितः) कायोत्सर्ग सहित (यथाजातः) परिग्रह की चिन्ता से रहित (द्विनिषद्यः) खड्गासन और पद्मासन इन दो आसनों से युक्त (त्रियोगशुद्धः) तीनों योगों से शुद्ध और (त्रिसन्ध्यम्) तीनों सन्ध्याओं में (अभिवन्दी) वन्दना करने वाला पुरुष (सामयिकः) सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक [अस्ति] है।

कठिन शब्दार्थ—आवर्त=दोनों हाथों को मिलाकर बायें से दांये ओर घुमाना। निषद्या=आसन। इसके कई भेद हैं पर सामायिक प्रतिमा के खड्गासन या पद्मासन इन दो में से कोई एकही होता है। त्रिसन्ध्यम्=प्रातःकाल, मध्यान्ह-काल और सायंकाल।

भावार्थ—चारों दिशाओं में तीन तीन आवर्त और एक एक नमस्कार करने वाला, कायोत्सर्ग सहित, खड्गासन या पद्मासन में स्थित, मन वचन काय को शुद्ध रखने वाला और सवेरे, दोपहर तथा शाम को वन्दना करने वाला पुरुष सामायिक प्रतिमाधारी कहलाता है ॥१३९॥

४. प्रोषध प्रतिमाधारी ।

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि, मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधायी, प्रणिधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

अन्वयार्थ—(मासे मासे) प्रत्येक माह में (चतुर्षु अपि) चारों ही (पर्वदिनेषु) पर्व के दिनों में (स्वशक्तिम्) अपनी शक्ति को (अनिगुह्य) नहीं छिपाकर (प्रणिधिपरः) शुभ ध्यान में तत्पर [सन्] होता हुआ (प्रोषधनियमविधायी) आदि अन्त में एकाशन पूर्वक उपवास करने वाला पुरुष (प्रोषधानशनः) प्रोषधोपवास प्रतिमा का धारी [अस्ति] है ।

कठिन शब्दार्थ—चतुःपर्व=चार पर्व दो अष्टमी और दो चतुर्दशी । प्रणिधि=एकाग्रता या शुभ ध्यान ।

भावार्थ—पर्व के दिनों में अपनी शक्ति के अनुसार उपवास एकाशन अथवा रसों का त्याग आदि करने वाला प्रोषधप्रतिमाधारी कहलाता है ॥१४०॥

---

* मूल श्लोक में 'प्रोषधनियमविधायी' यह पद है इसका अर्थ यह होता है कि पर्व के दिन केवल प्रोषध (एक भुक्ति) करना प्रोषध प्रतिमा है । तीसरी प्रतिमा धारक भव्य को किसी भी अवस्था में पर्व के दिन एकाशन तो नियम पूर्वक करना होगा और उपवास आदि करना सो यह तप है ।

[स्व. पं. सदासुखजी कृत भाषा वचनिका से]

५. सचित्तत्याग प्रतिमाधारी।

मूलफलशाकशाखा—करीरकन्दप्रसूनबीजानि।
नामानि योऽत्ति सोऽयं, सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (आमानि) कच्चे (मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि) मूल, फल, शाक, शाखा, करीर, कन्द, पुष्प और बीजों को (न अत्ति) नहीं खाता है (सः अयम्) वह (दयामूर्तिः) दया की मूर्ति स्वरूप (सचित्तविरतः) सचित्तत्यागप्रतिमा का धारी [अस्ति] है। *

कठिन शब्दार्थ—मूल=गाजर, मूली सकरकन्द आदि। फल=आम, नीबू, तोरई फलकुली आदि। शाक=पत्तों वाली शाक भाजी। शाखा=गन्ना और मूली की कोंपर वगैरह। करीर=कोंपल नये पत्ते। कन्द=सूरन, रतालु, आलू वगैरह। प्रसून=सब प्रकार के फूल। बीज=गेहूँ चना मुनक्का आदि के बीज। सभी बीज अंकुर पैदा करने की शक्ति होने से सचित्त कहलाते हैं।

भावार्थ—जो कच्चे फल फूल आदि नहीं खाता वह सचित्तत्याग प्रतिमा धारी है ॥१४१॥

६. रात्रिभुक्ति त्यागी।

अन्नं पानं खाद्यं, लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः, सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (सत्त्वेषु) जीवों पर (अनुकम्पमान-मनाः) दया रूप चित्त वाला होता हुआ (विभावर्याम्) रात्रि में (अन्नम्) चावल मूँग आदि पदार्थ (पानम्) दूध पानी वगैरह (खाद्यम्) लड्डू कलाकंद आदि (च) और (लेह्यम्) चाटने

---

* श्लोक में गिनाये हुए पदार्थों में जो कन्दमूल आदि अभक्ष्य पदार्थ हैं वे चाहे सचित्त हों या अचित्त; दोनों प्रकार के ही छोड़ने योग्य हैं।

योग्य रबड़ी आदि पदार्थों को (न अश्नाति) नहीं खाता है। (सः) वह (रात्रिभुक्तिविरतः) रात्रिभुक्तित्याग नामक प्रतिमा का धारी है।

भावार्थ—जो दयालु पुरुष रात में अन्न, पान, खाद्य और लेह्य इन चारों प्रकार के भोजन का त्याग कर देता है वह रात्रि-भुक्तित्यागप्रतिमा का धारी है * ॥१४२॥

७. ब्रह्मचर्यप्रतिमा धारी।

मलबीजं मलयोनिं, गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सम्।
पश्यन्नंगमनंगा-द्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥ १४३ ॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (मलबीजम्) रज वीर्य रूप मल से उत्पन्न (मलयोनिं) मल को उत्पन्न करने वाले, (गलन्मलं) मल प्रवाही (पूतगन्धि) दुर्गन्धि युक्त और (बीभत्सं) ग्लानि जनक (अङ्गं) शरीर को (पश्यन्) देखता हुआ (अनङ्गात्) काम सेवन से (विरमति) विरक्त होता है (सः) वह (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी श्रावक [अस्ति] है।

भावार्थ—जो शरीर की अपवित्रता का ख्याल कर काम-सेवन से जो बिलकुल विरक्त हो जाता है वह ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारी कहलाता है—इस प्रतिमा में स्त्री का त्याग हो जाता है ॥१४३॥

---

* यद्यपि रात्रिभोजन का त्याग अहिंसाणुव्रत के साथ दूसरी ही प्रतिमा में में हो जाता है तथापि वहां कृत, कारित अनुमोदना और मन वचन काय रूप नव कोटियों से त्याग नहीं होने के कारण विशेष निर्मलता नहीं हो पाती है। परन्तु इस प्रतिमा में नव कोटि से ही त्याग होता है। इस प्रतिमा का दूसरा नाम 'दिवा मैथुनत्याग' भी है जिसका अर्थ दिन में मैथुन त्याग करने का होता है।

८ आरम्भत्याग प्रतिमाधारी।

सेवाकृषिवाणिज्य-प्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतो, र्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥ १४४ ॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (प्राणातिपातहेतोः) जीव हिंसा के कारण (सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखात्) नौकरी खेती व्यापार आदि (आरम्भतः) आरम्भ से (व्युपारमति) विरक्त होता है (असौ) वह (आरम्भविनिवृत्तः) आरम्भत्याग प्रतिमाधारी [अस्ति] है।

भावार्थ—जो जीवहिंसा के कारणभूत नौकरी खेती व्यापार आदि आरम्भों का त्याग कर देता है वह आरम्भत्यागी श्रावक कहलाता है ॥१४५॥

९. परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी।

बाह्येषु दशसु वस्तुषु, ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः, सन्तोषपरः, परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥

अन्वयार्थ—(बाह्येषु) बाहर के (दशसु वस्तुषु) दस परिग्रहों में (ममत्वं) ममता को (उत्सृज्य) छोड़कर (निर्ममत्वरतः) वैराग्य में लीन (स्वस्थः) मायादि रहित स्वरूप में स्थित और (सन्तोषपरः) सन्तोषवृत्ति धारण करने वाला पुरुष (परिचित्त-परिग्रहात् विरतः) परिचित्त परिग्रह त्याग नामक प्रतिमा का धारी है।

कठिन शब्दार्थ—परिचित्तपरिग्रह=धान्य आदि बाह्य परिग्रह।

भावार्थ—* बाह्य परिग्रहों का त्याग करने वाला पुरुष परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी है ॥१४५॥

---

* शेषं वास्तु धनं धान्यं. द्विपदं च चतुष्पदम्।

१०. अनुमतित्याग प्रतिमाधारी ।

अनुमतिरारम्भे वा, परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधी-रनुमतिविरतः स मन्तव्यः ।१४६।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिसकी (आरम्भे) आरम्भ में (वा) तथा (परिग्रहे) परिग्रह में (वा) और (ऐहिकेषु कर्मसु वा) इस लोक सम्बन्धी कार्यों में (अनुमतिः) अनुमति (न अस्ति) नहीं है (सः) वह (समधीः) समान बुद्धिवाला पुरुष (खलु) निश्चय से (अनुमतिविरतः) अनुमति त्याग प्रतिमा का धारी (मन्तव्यः) मानने योग्य है ।

भावार्थ—जो किसी भी तरह के आरम्भ में, परिग्रह में और इस लोक सम्बन्धी कार्यों में अनुमति नहीं देता; सब में समान बुद्धि रखता है वह अनुमतित्यागप्रतिमाधारी है ।१४६।

११. उत्कृष्टश्रावक (उद्दिष्टत्यागप्रतिमाधारी)

गृहतो मुनिवनमित्वा, गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।
भैक्ष्याशनस्तपस्य-न्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४७ ॥

अन्वयार्थ—(गृहतः) घर से (मुनिवनम्) मुनिवन को (इत्वा) प्राप्त हो कर (गुरूपकण्ठे) गुरु के निकट में (व्रतानि) व्रतों को (परिगृह्य) ग्रहण करके (तपस्यन्) तपस्या करने वाला, (भैक्ष्याशनः) भिक्षा से भोजन करने वाला और (चेलखण्डधरः) खण्ड वस्त्र का धारी श्रावक (उत्कृष्टः) उत्कृष्टश्रावक [निगद्यते]

शयनासनं च यानं, कुप्यं भाण्डमिति दश ॥

१ क्षेत्र २ घर ३ सोना चांदी ४ गेहूं वगैरह ५ दासी दास आदि ६ गाय भैंस आदि ७ खाट पलंग बिस्तर आदि ८ बिस्तर आदि सवारी ९ वस्त्र आदि और बर्तन ये १० बाह्यपरिग्रह है ।

कहा जाता है। *

भावार्थ—जो घर से तपोवन में जाकर किसी गुरु के पास व्रत लेकर तपस्या करते हैं, मुनियों की तरह भिक्षावृत्ति से भोजन करते हैं और खण्डवस्त्र रखते हैं वे उत्कृष्ट श्रावक हैं। इन्हीं को "उद्दिष्टत्यागप्रतिमाधारी" भी कहते हैं क्योंकि ये अपने उद्देश्य से बनाये गये आहार को ग्रहण नहीं करते ॥ १४७ ॥

श्रेष्ठज्ञाता का स्वरूप

पापमरातिर्धर्मो, बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् ।
समयं यदि जानीते, श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥ १४८ ॥

अन्वयार्थ—(जीवस्य) जीव का (पापम) पाप (अरातिः) शत्रु है (च) और (धर्मः) धर्म (बन्धुः) भाई है (इति) इस तरह (निश्चिन्वन्) निश्चय करता हुआ पुरुष (यदि) यदि (समयम्) आगम को (जानीते) जानता है [तर्हि सः] तो वह (ध्रुवं) निश्चय से (श्रेयोज्ञाता) श्रेष्ठज्ञाता (भवति) होता है।

भावार्थ—पाप को शत्रु और धर्म को बन्धु समझने वाला शास्त्रों का ज्ञाता ही श्रेष्ठज्ञाता है ॥ १४८ ॥

उपसंहार (ग्रन्थ पढ़ने का फल)

इन्द्रवज्रा छन्द

येन स्वयं वीतकलंकविद्या—
दृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावम् ।

---

*पहली प्रतिमा से छठवीं प्रतिमा तक के जघन्य श्रावक, सातवीं से नवमी तक के मध्यम श्रावक और दशवीं तथा ग्यारहवीं प्रतिमा के धारी उत्तम श्रावक कहलाते हैं।

नीतस्तमायाति पतीच्छयेव
सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥ १४९ ॥

अन्वयार्थ—(येन) जिसने (स्वयम्) अपने आप (वीत-कलङ्कविद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावम्) निर्दोष ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी रत्नों के पिटारे को (नीतः) प्राप्त किया है। (तम्) उसको (त्रिषु विष्टपेषु) तीनों लोकों में (सर्वार्थसिद्धिः) धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की सिद्धि रूप स्त्री (पतीच्छया इव) मानों पति की इच्छा से ही [स्वयम्] (आयाति) स्वयं प्राप्त हो जाती है ॥ १४९ ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन रत्नों को प्राप्त कर लेता है उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हो सकता है अथवा जो इस "रत्नकरण्ड श्रावकाचार" ग्रन्थ के भाव को समझता है उसे सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। जैसे रत्न धारक पुरुषों को कन्या अपना पति बनाना चाहती है वैसे ही रत्नत्रय धारण करने वाले पुरुष को, सर्वार्थसिद्धि (स्वर्ग मोक्ष की लक्ष्मी) भी, अपना पति बनाना चाहती है।

अन्तमङ्गल (आशीर्वाद)

मालिनी छन्द

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता—
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥ १५० ॥

अन्वयार्थ—(जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी) जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों को देखने वाली (दृष्टिलक्ष्मीः) सम्यग्दर्शन

रूपी लक्ष्मी, (कामिनं) कामी पुरुष को (सुखभूमिः कामिनी इव) सुख के स्थानरूप स्त्री की तरह (मां) मुझे (सुखयतु) सुख देवे; (सुतं) पुत्र की रक्षा करने वाली (शुद्धशीला जननी इव) शीलवती माता की तरह (मां भुनक्तु) मेरी रक्षा करे और (कुलं) कुल को पवित्र करने वाली (गुणभूषाकन्यका इव) गुणों से भूषित कन्या की तरह (मां संपुनीतात्) मुझे पवित्र करे ॥१५०॥

भावार्थ—जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति की सेवा करती है, जैसे सदाचारिणी माता अपने पुत्र की रक्षा करती है और जैसे गुणवती कन्या दोनों कुलों को पवित्र करती है वैसेही जिनेन्द्र भगवान् का दर्शन करने वाली, सुख देने वाली, सातों शीलों को धारण करने वाली और निःशंकित आदि गुणों वाली सम्यग्दर्शन रूपी लक्ष्मी हमें सुख देवे अर्थात् हम भी सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त कर स्वर्ग और मोक्ष के सुख प्राप्त करें।

इति श्री स्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचिते रत्नकरण्ड-श्रावकाचारे सप्तमः परिच्छेदः ॥

अन्तर प्रदर्शन।

सामायिक शिक्षाव्रत-सामायिक प्रतिमा।

व्रतप्रतिमाधारी के सामायिक शिक्षाव्रत में कदाचित् अतिचार लग सकते हैं पर सामायिक प्रतिमा में अतिचारों का सर्वथा त्याग किया जाता है।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत—प्रोषध प्रतिमा।

प्रोषधोपवास शिक्षा व्रत में कभी अतिचार लग सकते हैं पर प्रोषधप्रतिमा में अतिचार कभी भी नहीं लगते यदि अतिचार लगें तो वह प्रतिमा भंग हो जाती है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—ब्रह्मचर्यव्रत।

ब्रह्मचर्याणुव्रत में स्वस्त्री के साथ विषय सेवन का त्याग नहीं होता पर ब्रह्मचर्य प्रतिमा में स्व और पर दोनों प्रकार की स्त्रियों का त्याग होता है।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा—ब्रह्मचर्य महाव्रत।

यद्यपि दोनों में स्त्री मात्र का त्याग हो जाता है तथापि ब्रह्मचर्य प्रतिमा में ब्रह्मचर्य महाव्रत जैसी विशुद्धता नहीं होती। ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी को वस्त्र छोड़ने में लज्जा आती है पर ब्रह्मचर्यमहाव्रत का धारी नग्न रहता हुआ भी लज्जित नहीं होता।

प्रश्नावली।

(१) प्रतिमा किसे कहते हैं ?

(२) एक मनुष्य, जिसके कि पांच अणुव्रत निरतिचार नहीं पलते, सामायिक-प्रतिमा धारण कर सकता है या नहीं ?

(३) ऐलक बैठकर भोजन करते हैं या खड़े होकर।

(४) ब्रह्मचर्यप्रतिमा का धारी किसी गरीब सजातीय मनुष्य की लड़की के विवाह में चन्दा दे सकता है या नहीं ?

(५) नवमी प्रतिमा का क्या लक्षण है ?

(६) आरम्भत्यागी श्रावक मुनियों को आहार देगा या नहीं ?

(७) वर्णी कौन कहाता है ?

(८) पांचवीं प्रतिमाधारी पुरुष क्या क्या नहीं खावेगा ?



श्रावकों के १२ व्रत व उनके अतिचार।

व्रतों के नाम	५-५ अतिचारों के नाम
५. अणुव्रत	
१. अहिंसाणुव्रत	छेदन, बंधन, पीडन, अतिभारारोपण, आहारवारण.
२. सत्याणुव्रत	परिवाद, रहोभ्याख्या, पैशुन्य, कूटलेखकरण, न्यासापहार.
३. अचौर्याणुव्रत	चौरप्रयोग, चौरार्थादान, विलोप, सदृशसन्मिश्र, हीनाधिकविनिमान.
४. ब्रह्मचर्याणुव्रत	अन्यविवाहाकरण, अनंगक्रीडा, विटत्व, विपुलतृषा, इत्वरिकागमन.
५. परिग्रहपरिमाणाणुव्रत	अतिवाहन, अतिसंग्रह, अतिविस्मय, अतिलोभ, अतिभारवहन.
३. गुणव्रत	
६. दिग्व्रत	ऊर्ध्वव्यतिपात, अधोव्यतिपात, तिर्यग्व्यतिपात, क्षेत्रवृद्धि, अवधिविस्मरण.
७. अनर्थदंडव्रत	कंदर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, अतिप्रसाधन, असमीक्ष्याधिकरण.
८. भोगोपभोगपरिमाणव्रत	विषयानुपेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृषा, अत्यनुभव.
४. शिक्षाव्रत	
९. देशावकाशिक	प्रेषण, शब्द, आनयन, रूपाभिव्यक्ति, पुद्गलक्षेप.
१०. सामायिक	वचनदुष्प्रणिधान, कायदुष्प्रणिधान, मनोदुष्प्रणिधान, अनादर, विस्मरण.
११. प्रोषधोपवास	अदृष्ट व अप्रमृष्टग्रहण, विसर्ग, आस्तरण, अनादर, अस्मरण.
१२. वैयावृत्य	हरितपिधान, हरितनिधान, अनादर, अस्मरण, मत्सरत्व.
सल्लेखना	जीविताशंसा, मरणाशंसा, भय, मित्रस्मृति, निदान.

श्री नर्मदा प्रिंटिंग वर्क्स, जबलपुर।

परिशिष्ट नं० २

रत्नकरण्ड श्रावकाचार के पद्यों की अकारादि क्रम से सूची ।

——:o:——

परिशिष्ट नं० ३

अर्थ करण्ड

——:०:——

परिशिष्ट नं० ४

भेद करण्ड

——:o:——

परिशिष्ट नं० ४

प्रश्नकरण्ड

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

समय तीन घण्टे पूर्णाङ्क १००

[१]

१—(क) इस ग्रन्थ में मुख्यता से किन किन बातों का वर्णन है ? ६

(ख) श्रावकाचार के कितने भेद हैं ? नाम सहित लिखो। ५

(ग) अष्ट मूलगुणों के नाम गिनाओ। इन्हें मूलगुण क्यों कहते हैं ? ७

२—(क) जब आगे की प्रतिमाओं में श्रावक पहुंचता है तो उसे पिछली प्रतिमाओं की क्रिया पालना आवश्यक है या नहीं ? ७

(ख) व्रत और अतिचार में क्या अन्तर है ? ५

(ग) दिग्व्रत के बिना देशव्रत किया जा सकता है या नहीं ? ४

३—(क) अनर्थ दण्डव्रत का स्वरूप समझाकर उसके अतिचार गिनाओ ? ७

(ख) समाधि मरण कब और क्यों किया जाता है ? संक्षेप में उसकी विधि लिखो। ६

४—(क) इस ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन का इतना महत्व क्यों बतलाया गया है ? ५

(ख) अनुयोग से क्या समझते हो ? प्रथमानुयोग के दो चार ग्रन्थों के नाम लिखो। ५

(ग) अमूढ़ दृष्टि अंग, मूढ़ता, मद इनसे क्या समझते हो ? ६

५—(क) वैयावृत्य में किन २ कामों को लिया जाता है। ४

(ख) परिग्रह परिमाण व्रत का दूसरा नाम इच्छा परिमाण क्यों रक्खा गया है ? ४

(ग) भोग और उपभोग में क्या अन्तर है। और भोगोपभोग परिमाण में किन २ वस्तुओं का त्याग आवश्यक बतलाया है ? ६

६—कोई एक पद्य लिखो जो तुम्हें प्रिय हो। ५

७—समन्तभद्र सम्राट खारवेल, और सम्राट चन्द्रगुप्त इनमें से किसी एक का जीवन चरित्र लिखो। १०

८—ब्रह्मचर्य या स्त्री शिक्षा पर एक निबन्ध लिखो जो तुम्हारी उत्तर कापी के चार पेजों से अधिक न हो। १०

शुद्धता और सुन्दरता के लिये ५

—:o:—

[२]

१—शास्त्र, देवमूढ़ता, चारित्र, हिंसादान, अनर्थदंड और ७ वीं प्रतिमा का स्वरूप श्लोक सहित लिखो। २०

२—व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सल्लेखना, और ज्ञाता से क्या समझते हो। भाव मात्र लिखो। १०

३—वीतरागी उपदेश कैसे करते हैं। कुशील और ब्रह्मचर्य में कौन प्रसिद्ध हुये हैं? देश व्रत धारण करने से क्या लाभ है? मुनि महराज किस प्रतिमा के धारी होते हैं? ८

४—निम्न लिखित श्लोकों को पूरा करके अर्थ लिखो—

अमरासुर नर, क्षितिगत मिव, निःश्रेयस मधिगच्छ, गृहतो मुनिवन १५

५—सम्यग्दर्शन, सामायिक, सल्लेखना या गृहस्थधर्म से किसी एक पर अपनी पुस्तक के आधार पर २०—२५ पंक्तियों में एक निबन्ध लिखो। १२

६—समीचीन, असंपृक्ति, परिवाद, पैशुन्य, कौत्कुच्य, पिहित, अनुप सेव्यत्वा, स्मय और दिवा इनका अर्थ लिखो। १०

७—अचौर्याणुव्रत, भोगोपभोग परिमाणव्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, और सलेखना के अतीचारों के नाम लिखो। १०

८—उत्तीर्ण होने की इच्छा से जिन मन्दिर में द्रव्य चढ़ाने का संकल्प करना, सती होना, गृहस्थ विद्या गुरु को नमस्कार करना, नदी में स्नान करना, रेशमी वस्त्र पहिनना, और सल्लेखना करके प्राण त्यागना इनमें से क्या क्या छोड़ने योग्य है और उनमें क्या दोष है ? ५

शुद्ध और साफ लिखने के— ५

——:o:——

[३]

१—गुरु किसको कहते है ? पाखण्डी गुरु का लक्षण कहो। धर्म, सम्यक चारित्र, अचौर्याणुव्रत, और सल्लेखना इनका श्लोक सहित लक्षण कहो। १०

२—(अ) द्रव्यानुयोग में किस विषय का वर्णन है ? २

(ब) सम्यक्त्वी पुरुष मरने के बाद किस प्रकार की अवस्था धारण करता है ८

(क) एक मनुष्य बी० ए० पढ़ा है, क्या वह रत्नत्रयज्ञानी हो सकता है ? यदि हाँ तो कैसे ? यदि नहीं तो कैसे ? ४

३—(अ) सामायिक की विधि और उस समय करने का विचार कहो ५

(ब) सम्यक्त्वी मनुष्य को किस गुण की जरूरत है ? ५

४—सम्यग्दर्शन विषय पर १५ लाइन में सुन्दर लेख लिखो। १२

५—सम्यग्दर्शन – मिथ्यात्व, दिग्व्रत – देशव्रत, अणुव्रत – महाव्रत, इनमें क्या फ़रक है ? कहो, श्लोक सहित लिखो। १८

६—व्रती श्रावक होने के लिये कितने व्रतपालन की जरूरत है ?
रत्नकरण्ड श्रावकाचार को किसने बनाया है ? उस व्यक्ति को क्या आप जानते है ?
आपको इस ग्रन्थ में जो श्लोक अच्छा लगा हो वह स्पष्ट व शुद्ध लिखो। २०

७—अच्छी तरह और शुद्ध लिखने के लिये

——:o:——

परिशिष्ट नं० ६

निबन्ध करण्ड

१—सम्यग्दर्शन

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र के समुदाय को ही धर्म कहते हैं। इसी धर्म के सहारे भव्यजीव संसार समुद्र को पार कर मोक्ष नगर में पहुँचते हैं। सम्यग्दर्शन आदि को रत्नत्रय कहते हैं। इसमें सम्यग्दर्शन का अधिक महत्व है। जैसे नाव का खेनेवाला न हो तो नाव किनारे नहीं लग सकती वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, जैसे बीज के बिना अंकुर होना बढ़ना, फूलना और फलना नहीं होता वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र नहीं होते हैं अथवा जैसे महल खड़ा करने के लिये पक्की नीव डालने की आवश्यकता होती है वैसे ही मोक्ष महल के लिये सम्यग्दर्शन रूपी पक्की नीव का होना बहुत आवश्यक है।

मतलब यह है कि सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र व्यर्थ हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन होने पर ही ज्ञान को सम्यग्ज्ञान और चारित्र कह सकते हैं तथा ये ही तीन मोक्ष के कारण हैं।

इसलिये सम्यग्दर्शन का क्या स्वरूप है? यह समझ लेना चाहिये।

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का तीन मूढ़ता रहित और आठ मेद रहित पक्का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन में "सम्यक्" और "दर्शन" ये दो शब्द हैं जिनका अर्थ "सच्चा श्रद्धान" करना होता है।

सच्चा देव—वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होता है. उसमें जन्म जरा आदि अठारह दोष नहीं होते हैं। उसे संसार के सब चर अचर पदार्थों का पूरा २ ज्ञान होता है अर्थात् उसे केवल-ज्ञान होता है। उपदेश करते समय उनके किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं होता। सच्चा शास्त्र, वीतराग भगवान के द्वारा कहे हुये तत्वों का वर्णन करता है, उसका कोई खंडन नहीं कर सकता और उसमें जीवों के हित का ही कथन रहता है।

सच्चे गुरु—पाँच इन्द्रियों के विषयों से दूर रहते हैं, उन्हें संसार के सुखों की इच्छा नहीं रहती और वे रुपया पैसा आदि परिग्रह से किसी प्रकार का मोह नहीं रखते हैं। वे सदा ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं।

ऐसे देव, शास्त्र और गुरु पर पक्का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

यह सम्यग्दर्शन "त्रिमूढ़ापोढ़ं, अष्टांगं और अस्मयं" इन तीन विशेषणों वाला है। इन तीनों का यहां संक्षेप से वर्णन करते हैं।

मूढ़ता—देव मूढ़ता, लोकमूढ़ता और पाखण्डिमूढ़ता इस तरह तीन प्रकार हैं। वर की इच्छा से रागी द्वेषी देवताओं की पूजा करना अज्ञानी लोगों द्वारा चलाई हुई (पर्वत से गिरना अग्नि में तपना, धर्म समझ समुद्र नदी आदि में नहाना आदि) रीतियाँ और ठग लुच्चे लफंगे और परिग्रही साधुओं को सच्चा समझना यह सब सम्यग्दृष्टी जीव को छोड़ देना चाहिये और निःशंकित आदि आठों अंगों का पालन करना चाहिये। इनका पालन करने से ही सम्यग्दर्शन धारण किया जा सकता है जैसे अक्षर रहित मंत्र से सर्प आदि के विष दूर नहीं होते

वैसे ही आठों अंगों का पालन करना सम्यग्दर्शन धारण करने वाले के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

तीसरा विशेषण (अस्मयं) है। स्मय का अर्थ मद है। मद करने वाले को सम्यग्दर्शन नहीं होता। अपने को ज्ञानवान और दूसरे को अज्ञानी समझना ज्ञानमद है। इसी प्रकार अपने धन के सामने दूसरे को निर्धन समझना अर्थात् अपने ज्ञान धन आदि का घमंड करना, दूसरों को तुच्छ समझना मद है। जो मद करता है वह योग्य और अयोग्य बातों को नहीं समझ सकता इसलिये ज्ञान, पूजा कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर का मद नहीं करना चाहिये।

सम्यग्दर्शन के कारण ही कोई पूज्य हो सकता है; इसलिये सम्यग्दर्शन का धारण करना बहुत आवश्यक है इस ग्रन्थ में व्यवहारसम्यग्दर्शन का कथन है। निश्चय सम्यग्दर्शन का स्वरूप नीचे के श्लोक में दिया जाता है:—

एको मे शाश्वतश्चात्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः।
शेषा बहिर्भवा भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः॥

अर्थात् मैं सदा अकेला हूं, मैं ज्ञान दर्शन स्वरूप हूं। और सब बाह्य पदार्थों से भिन्न हूं। इस प्रकार के विचार, निश्चय सम्यग्दृष्टी जीव के होते हैं।

व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चयसम्यग्दर्शन ये दोनों एक दूसरे के सहायक और संसार समुद्र से पार उतारने वाले हैं, इनका धारण करना आवश्यक है।

२–सामायिक

सामायिक शब्द का अर्थ सब पापों का त्याग करना है। गृहस्थी, पाँचों पापों का पूर्ण तरह त्याग करने में समर्थ नहीं हो पाता इसलिये उसका पालन करने के लिये आचार्यों ने क्षेत्र और काल की मर्यादा बताई है।

प्रतिदिन, मुख्यता से अष्टमी और चतुर्दशी के दिन पाँचों पापों का त्याग करने के विचार से कुछ समय जिन मन्दिर अथवा एकान्त में बैठना चाहिये। मन प्रसन्न रखे और व्यापार नौकरी आदि से चित्त को दूर रखे। निश्चित समय तक पद्मासन या खड्गासन से पाचों पापों का त्याग करने के लिये सामायिक करना चाहिये।

सामायिक से आत्मा पवित्र बनता है,

सामायिक के समय परिणाम (भाव) कैसे होना चाहिये, यह नीचे के श्लोक में दिया गया है:—

अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥

इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि मैं कौन हूँ, मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? जिस संसार में मैं रहता हूँ, उसका क्या स्वरूप है? मेरा ध्येय जो मोक्ष है उसका यथार्थ (सच्चा) मार्ग कौनसा है? अन्तःकरण में जो भाव पैदा होता है उससे शुद्ध आत्मा के स्वरुप की प्राप्ति होती है। गृहस्थ, सामायिक के समय चित्त स्थिर रखता है। आए हुए उपसर्ग परिषहों को सहन करता है, योग साधन करता है, मौन धारण करता है, इससे वह गृहस्थ, कपड़े का उपसर्ग वाले मुनि के समान मालूम होता है।

अन्य व्रतों के समान सामायिक व्रत के भी पाँच अतीचार होते हैं। मन वचन काय की दुष्प्रवृत्ति, सामायिक व्रत में अनादर और सामायिक के पाठ अथवा विधि वगैरह भूल जाना, इन सबका त्याग कर सामायिक करना चाहिये।

३-दान

'गेही दानेन शोभते' अर्थात् गृहस्थ की दान देने से शोभा होती है। यह श्रावक को प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये इसलिये दान को षट आवश्यक कर्मों में बताया गया है, आचार्य ने वैयावृत्य का लक्षण "दानं वैयावृत्यं" कहा है।

धर्म का साधन करने के लिये गुणी पात्र को भक्ति भाव पूर्वक, फल आशा नहीं रखते हुये शक्ति के अनुसार आहार, औषध, उपकरण और आवास (वसतिका अथवा अभय) का दान करने को वैयावृत्य बतलाया है।

जैसे झरने का बहता हुआ पानी निर्मल रहता है वैसे ही योग्य पात्र को दान करते रहने से सम्पत्ति सफल समझी जाती है।

विधि, द्रव्य, दाता और पात्र की विशेषता से दान में विशेषता होती है। आचार्य ने श्रद्धा आदि दाता के सात गुण बताये हैं। दाता के समान पात्र भी उत्तम होना चाहिये। जो संसार समुद्र को पार करने के लिये नाव के समान हैं, ऐसे मुनि महाराज उत्तम पात्र हैं, श्रावक मध्यम पात्र और अविरत-सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र कहलाते हैं।

मुनि को दान किस प्रकार करना चाहिये यह पड़गाहन आदि बता दिया गया है।

जो दान किया जाता है उस पदार्थ को द्रव्य कहते हैं, मुनि को दिया हुवा दान, उनके तपको बढ़ाने में मदद करने वाला होना चाहिये।

संसार की सम्पत्ति अपने साथ परलोक में नहीं जा सकती, केवल दान करने से प्राप्त पुण्य ही परलोक में साथ चलता है। आरम्भ आदि के कारण गृहस्थ के पाप का बंध होता है, पाप का बंध केवल दान करने से ही छूटता है। ऐसा ही आचार्य ने कहा है:—

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावतेवारि॥

विधि-पूर्वक दान करने से अनेक उत्तम फल प्राप्त होते हैं।

बड़ का एक छोटा बीज यदि अच्छे स्थान में बोया जावे तो बड़ा वृक्ष हो जाता है। यह सब दान की महिमा है।

४-पूजा

गृहस्थ के षट आवश्यक कर्मों में से यह भी एक है। इसलिये वीतराग भगवान की प्रतिदिन पूजा अवश्य करनी चाहिये। पूजा का अर्थ उनके गुणों का आदर करना है। जिनेन्द्र भगवान राग-द्वेष आदि रहित होते हैं। इन्हीं की पूजा करनी चाहिये। पूजा करने से सब प्रकार के दुःख दूर होते हैं और हरेक प्रकार के सुख मिलते हैं। इसलिये वीतराग जिनेन्द्र भगवान के स्वरूप में पक्का श्रद्धान करना चाहिये, यही पूजा है। द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार पूजा करनी चाहिये।

द्रव्य—पूजा की सामग्री को कहते हैं। जल, चन्दन (गन्ध-सुगन्ध), अक्षत, पुष्प, नैवेद्य (चरु), दीप, धूप और फल ये आठ द्रव्य होते हैं। शुद्ध तथा प्राशुक (पानी छानकर उसमें लोंग आदि डालना) जल से द्रव्य धोना चाहिये। स्वच्छ द्रव्य से भाव शुद्ध होते हैं।

क्षेत्र—जिनेन्द्रभगवान की मूर्ति जिसमें विराजमान हो ऐसा मन्दिर अथवा गृह चैत्यालय ही पूजा करने के योग्य स्थान हैं। जहां मन्दिर न हो वहां चित्त को एकाग्र कर अपने मन-मन्दिर में अरहन्तभगवान की मूर्ति को विराजमान समझ उनके गुणों की पूजा करनी चाहिये।

काल—"अकालो नास्ति धर्मस्य जीविते चंचले मति" अर्थात् जीवन चञ्चल है, इसलिये धर्म साधन करने के लिये कोई समय अकाल नहीं, सदा धर्म किया जा सकता है। फिर भी प्रातःकाल में स्नान करने के बाद का समय अधिक अच्छा है। इस समय चित्त अधिक प्रसन्न रह सकता है। इसलिये परिणामों को शुद्ध करने के लिये प्रातःकाल पूजा करना चाहिये।

भाव—पूजा शुद्ध भावों से करनी चाहिये। जितने अधिक शुद्ध भाव होंगे वह उतना ही अधिक उन्नत समझा जाता है।

जितना अधिक स्वच्छ पानी होगा उसमें उतना ही स्पष्ट प्रतिबिम्ब पड़ता है, वैसे ही जिसके जितने अधिक भाव शुद्ध होंगे, उसमें भगवान के गुणों का प्रतिबिम्ब अधिक अच्छा पड़ेगा। जैसे गुड़ और शक्कर का स्वाद शब्दों में

नहीं आ सकता, खाने वाला ही स्वाद जानता है वैसे ही शुद्ध भावों का आनन्द वही पाता है, जिसके भाव शुद्ध होते हैं। भाव शुद्ध बनाने के लिये भाव पूर्ण स्तोत्र, मधुर स्वर. बाजे और उत्साही भक्तमंडली आदि आवश्यक हैं।

पूजा निःशंक भावों से करनी चाहिये तभी उसका फल मिलता है। जैसे भगवान महावीर के दर्शन करने के एक मेंढक मुँह में कमल लेकर चला और बीच में हाथी के पांव के नीचे दब कर मर गया, उसे स्वर्ग मिला। ऐसे ही जो मनुष्य पवित्र भावों से जिन भगवान की पूजा करेंगे उन्हें स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही पूजा का फल है।

५–सल्लेखना

सल्लेखना शब्द का अर्थ उत्तम प्रकार से शरीर और कषायों का त्याग करना है। जैसा स्वामी समन्तभद्र ने कहा है:—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥

जब उपसर्ग से बचाव न हो, दुर्भिक्ष दूर न हो सके, बुढ़ापे में अथवा बीमारी में जब कोई उपाय न हो सके तब समाधिमरण करना आवश्यक है। शरीर का त्याग करने की अपेक्षा मन के विकार और कषायों का त्याग करना ही समाधि-मरण का मुख्य उद्देश्य है।

इष्ट-मित्रों से प्रेम, शत्रुओं से द्वेष और सब बाह्य पदार्थों से ममता छोड़कर मन शुद्ध करना चाहिये। जीवन में जिनसे सम्बन्ध रहा हो उनसे अपने अपराधों की क्षमा माँगना चाहिये और उनके अपराधों को क्षमा कर देना चाहिये। उत्साह पूर्वक धर्मशास्त्र सुनने में मन लगावे। इस तरह मन वश में हो जाता है।

अब शरीर के छोड़ने का क्रम बतलाते हैं। पहले अन्न का त्याग करे, फिर क्रम से दूध और छाछ पीवे, बाद में कांजी और गर्म पानी पीना चाहिये। इन सबको छोड़ कर यथाशक्ति उपवास कर पञ्चनमस्कार मन्त्र पढ़ते हुये शरीर त्याग कर देना चाहिये।

समाधिमरण का स्वरूप न समझने वाले इसे आत्म हत्या कहते हैं किन्तु यह बड़ी भूल है। समाधि कषायों का त्याग करने के लिये होती है और आत्महत्या कषायों के कारण ही की जाती है। इसलिये आत्महत्या का फल कभी अच्छा नहीं हो सकता। समाधिमरण के लिये धर्म क्षेत्र अच्छा होता है और कषायों को मन्द करने के लिये हमेशा के रहने के स्थान से दूर का स्थान अधिक अच्छा समझा जाता है।

कषायों से बड़े तपस्वियों के मन भी चञ्चल हो जाते हैं इसलिये चित्त को स्थिर बनाये रखने के लिये धर्म में स्थिर बनाये रखने वाले गुरुओं के पास समाधिकरण करना चाहिये।

सल्लेखना के भी जीविताशंसा आदि अतीचार होते हैं, उनका त्याग करना चाहिये।

विधिपूर्वक एकाग्रचित्त से सल्लेखना धारण करने से प्रत्यक्ष में कषायें मन्द हो जाती हैं और परोक्ष में उत्तमगति प्राप्त होती है।

स्वामी समन्तभद्र कहते हैं:—

> निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
> निष्पिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः॥

——:o:——

पृष्ठ ९७ से अंत तक साहित्य प्रेस, जबलपुर में मुद्रित।